आचार्य मल्लिषेण विरचित

नागकुमार चरित्र

• सम्पादक •

उपाध्याय मुनि निर्णय सागर

प्रस्तुति: निर्ग्रंथ ग्रन्थमाला

संस्करण : प्रथम - 1500 प्रतियाँ सन् 2007
@ सर्वाधिकार सुरक्षित : प्रकाशकाधीन
निर्ग्रंथ ग्रंथमाला : ग्रंथाक-132

ग्रंथ : नागकुमार चरित्र
ग्रंथ प्रणेता : आचार्य भगवन् मल्लिषेण
पावन आशीष : प. पू. सिद्धांत चक्रवर्ती आचार्य १०८ श्री विद्यानन्द जी महाराज
सम्पादक : उपाध्याय मुनि निर्णय सागर
सहयोगी : मुनि श्री १०८ सत्य सागर जी महाराज
ऐलक १०५ श्री विमुक्त सागर जी
क्षुल्लक १०५ श्री विशंक सागर जी एवं समस्त त्यागी वृन्द
प्रकाशक : निर्ग्रंथ ग्रन्थमाला समिति (पंजीकृत) दिल्ली
मूल्य : स्वाध्याय
ग्रंथ प्राप्ति स्थान : १.चन्द्रा कॉपी हाउस, १४/१०, हॉस्पीटल रोड़, आगरा (उ.प्र.)
२.निर्ग्रंथ ग्रंथमाला, शाखा श्री दि. जैन ऋषभदेव मंदिर,
ऋषभपुरी, टूण्डला चौराहा, टूण्डला-जिला फिरोजाबाद (उ.प्र.)
मुद्रक : अनिल कुमार जैन
चन्द्रा कॉपी हाउस, हॉस्पीटल रोड, आगरा (उ.प्र.) फोन: २४६३१९५

सम्पादकीय

श्री जिनेन्द्र भगवान द्वारा प्रणीत जिनागम चार अनुयोगों में विभक्त है, जिस प्रकार गाय के चारों स्तनों में दूध समान वर्ण, शक्ति, स्वाद, स्पर्श व उपयोगिता से युक्त होता है उसी प्रकार पुष्प की चार पंखुड़ी की तरह ही प्रथमानुयोग, चरणानुयोग, करणानुयोग एवं द्रव्यानुयोग ये जिनवाणी के चार अनुयोग हैं। जिनवाणी का प्रत्येक शब्द प्राणी मात्र का कल्याण करने में समर्थ है, यदि हम उस शब्द का सही अर्थ समझने का प्रयास करें तो। जैन दर्शन में सभी कथन सापेक्ष हैं, निरपेक्ष कथन तो अकल्याणकारी ही होता है। जिन वचन ही समस्त भव रोगों के लिए परमौषधि के समान है। इन्हीं का (जिन वचनों का) समीचीन आश्रय/अवलम्बन भव्य जीवों को भव वारिधि से तारने के लिए समुचित व समर्थ नौका के समान है। जिन वचनों की महिमा के बारे में आचार्य भगवन् श्री कुन्दकुन्द स्वामी जी कहते हैं–

जिण वयण मोसह मिणं, विसय सुह विरेयणं अमिद भूयं।
जर मरण वाहि हरणं, खय करणं सव्व दुक्खाणं ॥17 ॥द. पा.

जिनेन्द्र भगवान के वचन रूपी यह औषधि विषय सुखों का विरेचन करने वाली तथा अमृतभूत है। जन्म, जरा, मृत्यु रूपी रोगों की परिहारक एवं सर्व दुखों का क्षय करने वाली है। उस परमौषधि का सेवन हमें अपनी पात्रता के अनुसार करना है। जिस प्रकार कुशल वैद्य रोगी की वय, रोग, शक्ति, प्रकृति, मौसम का प्रभाव देखकर, औषधि की मात्रा, सेवन की विधि व पथ्यापथ्य की बातों का समीचीन विचार करके ही रोगी को औषधि का सेवन कराता है, उसी प्रकार परम पूज्य श्री दिगम्बर जैनाचार्य रूपी कुशल वैद्यों के निर्देशानुसार हम सभी को भी क्रमशः जिनागम का स्वाध्याय करना है तभी हम जन्म, जरा, मृत्यु जैसे रोगों से मुक्तिप्राप्त कर सकते हैं। यदि हमने कुशल वैद्य के निर्देशों व सुझावों की उपेक्षा करके स्वेच्छाचारिता पूर्वक (मनमाने ढंग से) औषधि का सेवन किया तो हो सकता है रोग नष्ट होने की बजाय बढ़ भी सकता है। तथा साथ में अन्य भी कई रोग पैदा हो सकते हैं अतः जिनागम (जिनेन्द्र भगवान या आप्त प्रणीत, गणधर भगवन्तों द्वारा संग्रहीत एवं दिगम्बर मुनियों द्वारा लिपिबद्ध शास्त्रों को ही जिनागम कहते हैं) का प्रत्येक अक्षर, शब्द, पद, वाक्य श्रद्धान के योग्य हैं। जिनवाणी का कोई भी अंश/अंग उपेक्षणीय नहीं है। आचार्य भगवन् श्री शिव कोटि महाराज कहते हैं –

पद मक्खरं च एक्कंपि जो ण रोचेदि सु णिदिट्ठं।
सेसं रोचंतो वि हू मिच्छ दिट्ठी मुणेयव्वा ॥ (मूलाराधना)

जो जिनागम में प्रणीत एक भी अक्षर, शब्द, वाक्य या गाथा की श्रद्धा न करे और समस्त आगम को माने या उस पर श्रद्धा करे तो भी वह मिथ्या दृष्टि है अतः कोई भी अनुयोग कभी अकल्याणकारी नहीं होता अपनी पात्रता के अनुसार सभी का स्वाध्याय करना चाहिए।

प्रथमानुयोग के ग्रंथों में त्रेसठ शलाका के महापुरुषों का जीवन चरित्र दर्शाया गया है "उन्होंने जीवन में जो शुभाशुभ क्रियायें की, पुण्य पाप का बंध किया उसका क्या फल प्राप्त हुआ" का वर्णन है। एवं कर्म सिद्धान्त को प्रत्यक्ष दूरदर्शन (चलचित्र) पर चल रहे चित्रों की तरह दिखाया गया है। प्रथमानुयोग के शास्त्रों का प्रारम्भिक दशा में (स्वाध्याय के क्रम में) स्वाध्याय अत्यन्त आवश्यक है। इस अनुयोग का स्वाध्याय करने से पापों से भीति, जिनेन्द्र भगवान में प्रीति, सच्चे देव, शास्त्र, गुरु व जिनधर्म में अनुराग व रुचि, संयम प्राप्ति की प्रबल भावना, संसार शरीर भोगों से उदासीनता/विरक्ति, रत्नत्रय में अनुरक्तिकी भावना जागृत होती हैं। आचार्य भगवन् समन्तभद्र स्वामी जी कहते हैं –

प्रथमानुयोग मर्थाख्यानं चरितं पुराण मपि पुण्यम्।
बोधि समाधि निधानं बोधति बोधः समीचीनः ॥43॥ र. श्रा.

प्रथमानुयोग पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का प्रतिपादक है। पुराण/पौराणिक पुरुषों के पुण्य चरित्र का कथन करता है यह बोधि (रत्नत्रय – सम्यक दर्शन, ज्ञान, चारित्र) एवं समाधि– निर्विकल्प ध्यान की अवस्था (जो अभेद रत्नत्रय के प्राप्त होने पर शुद्धोपयोगी मुनि के आत्मा में लीन होने पर प्राप्त होती है जिसे आत्मानुभूति भी कहते हैं इसका प्रारंभ सातवें अप्रमत्त गुणस्थान से होता है इसके पूर्व शुद्ध आत्मा की प्रत्यक्षानुभूति कदापि संभव नहीं है। अर्थात् असम्भव है) का खजाना है ऐसे समीचीन बोध को देने वाला प्रथमानुयोग/कथानक है अपितु उनमें श्रावक धर्म व मुनि धर्म का कथन करने वाला चरणानुयोग भी उपलब्ध होता है। गुणस्थानों, मार्गणा स्थानों, दस प्रकार के करणों एवं त्रिलोक संबधी कथन होने से करणानुयोग, जीव की स्थिति तथा जीवादि द्रव्यों के स्वभाव, शुद्ध गुण, पर्याय का कथन भी प्रथमानुयोग में मिलने से द्रव्यानुयोग भी दृष्टिगोचर होता है। प्रथमानुयोग में भी संक्षेप रूप से चारों अनुयोगों का कथन मिल जाता है ऐसा कहना भी कोई अतिशयोक्तिनहीं है।

स्वाध्याय से विमुख या एकान्तवाद की पंक में लिप्त जो अज्ञ महानुभाव प्रथमानुयोग को कथा कहानी कहकर उसकी उपेक्षा करते ही हैं वे अपने जीवन के साथ खिलवाड़ तो करते हैं साथ ही जिनागम की अवहेलना कर अन्य भव्य जीवों के पतन में भी कारणरूप से सहभागी हो जाते हैं।

अतः मन्द कषायी, भद्र परिणामी, प्रशम, संवेग भावयुक्तउन समस्त स्वाध्याय प्रेमी, सत् श्रद्धालु धर्मस्नेही, आत्महितेच्छुक, पाप भीरु महानुभावों के लिए विनम्र सुझाव/निर्देश है कि वे जिनेन्द्र भगवान की वाणी का अपलाप करके पाप के भागीदार न बनें, अपितु समीचीन शास्त्रों का समीचीन विधि से स्वाध्याय करके स्वपर के कल्याण में सहयोगी बनें। सम्यक्ज्ञान रूपी नेत्र के बिना जीव कभी भी अपना कल्याण नहीं कर सकता है अतः यथाशक्तिनित्य विनयपूर्वक विशुद्ध भावों से स्वाध्याय करने का समीचीन प्रयास करें।

इस ग्रंथ के पुनः प्रकाशन का उद्देश्य यही है कि अधिक से अधिक भव्य जीव स्वाध्याय के लिए प्रेरित हों। वर्तमान में स्वाध्याय की परम्परा मंद होती चली जा रही है क्योंकि जो स्वाध्याय करना चाहते हैं वे (प्रारम्भिक स्वाध्यायार्थी) बड़े-ग्रंथों को देखकर ही अपना साहस खो बैठते हैं। तथा प्रथमानुयोग के ग्रंथ सर्वत्र सहज सुलभ भी नहीं हो पा रहे हैं अधिकांशतः एकान्तवाद से दूषित साहित्य दृष्टिगोचर हो रहा है जिससे प्राणी मिथ्यात्व रूपी अंधकार में भटकते हुए भव भ्रमण की वृद्धि ही कर रहे हैं अतः प्रथमानुयोग के लघु शास्त्रों का प्रकाशन इस युग की आवश्यकता की पूर्ति में सहयोगी सिद्ध होगा।

इस ग्रंथ के सम्पादन में मुझ अल्पज्ञ साधक के द्वारा जो त्रुटि रह गई हों तो सकल संयमी विज्ञजन मुझे क्षमा करते हुए भूल सुधारने हेतु संकेत देने का कष्ट करें, इसमें जो त्रुटि हैं वे सब मेरी अल्पज्ञता की द्योतक हैं, तथा जो भी अच्छाई हैं वे सब परम पूज्य आचार्य भगवन्तों का सुप्रसाद ही हैं। अतः गुणग्राही बन कर गुण ग्रहण करें।

"अलमति विस्तरेण"

कश्चिदल्पज्ञ श्रमणः जिन चरण चञ्चरीक
टूंडला (फिरोजाबाद)
03.12.2000

देहरा तिजारा (अलवर, राज.) में
१००८ श्री चन्द्रप्रभ भगवान
की स्वर्ण जयंती (५०वीं प्रकट तिथि)
के पुनीत अवसर पर प्रकाशित
ग्रंथाक – ३२

निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला

नागकुमार चरित्र

आचार्य मल्लिषेण विरचित

पुण्यार्जक श्रावक

महिला जैन मिलन (शाखा-332)

फिरोजाबाद (उ0प्र0)

धन, पद, यश पाने में, स्पर्धा करता है प्राणी।
किन्तु ज्ञान धन, सम्यक् श्रद्धा, व्रत में करता नहीं प्राणी॥
चेतन की निधि लूटो ऐसे, ज्यों रंक निधि को गहता है।
वे निजासक्त, विरागी पर से, निर्णय होते कल्याणी॥

आचार्य श्री मल्लिषेण सूरि का संक्षिप्त परिचय

भगवान महावीर स्वामी के पश्चात् निरन्तर प्रवाहित निर्मल श्रमण परम्परा की पुनीत भागीरथी धारा में अनेकों प्रबुद्ध, त्याग तपस्या की प्रतिमूर्ति दिगम्बर संत, भदंत, ऋषि, मुनि, अनगार हुए। वस्तु तत्व का प्रतिपादक जिनधर्म यद्यपि अनादि अनन्त धारा रूप परम पूता मन्दाकिनी की तरह प्रवाहमान है तथा उसकी धारा द्रव्य क्षेत्र काल भाव आदि के अनुसार मन्द-मंदतर मंदतम अथवा तीव्र - तीव्रतर -तीव्रतम रूप में बहती है। किसी भी द्रव्य का परिणमन सदैव एकसा नहीं रहता। एतदर्थ परिवर्तन प्रकृति की अपरिवर्तनीय नियति है। अस्तु!

दिगम्बर जैन संतो की पुनीत परम्परा में श्री मल्लिषेणाचार्य नामक अनेकाधिक मनोज्ञ वाग्मी, आध्यात्मिक रसिक, परम तपस्वी गणनायक आचार्य हुए हैं। महाज्ञानी, परम निस्पृही, निजात्म रस के अनुभोक्ता आचार्य श्री मल्लिषेण सूरि जो कि प्रस्तुत ग्रंथ नाग कुमार चरित्र के कर्त्ता हैं वे अन्य मल्लिषेणाचार्य से पृथक् हैं। किन्हीं-किन्हीं प्रबुद्ध विद्वानों को यह भ्रम है कि 'स्याद्वाद मंजरी' के कर्त्ता श्री मल्लिषेणाचार्य इनसे अप्रथक् हैं किन्तु यह श्रम भी अब तिरोहित हो चुका है। क्योंकि उक्त ग्रंथ के कर्त्ता का काल शक् संवत् 965 (10 वीं शताब्दी) है। मंत्र-तंत्र एवं वैदिक शास्त्रों के रचयिता श्री मल्लिषेण श्री उक्त आचार्य से पृथक् हैं।

'नाग कुमार चरित्र' के रचयिता आचार्य श्री मल्लिषेण सूरि ''उभयभाषा कवि चक्रवर्ती'' की उपाधि से अलंकृत रहे, जब कि अन्य दो आचार्य ''मल धारिन्'' पद से युक्त थे। प्रस्तुत ग्रंथ के कर्त्ता आचार्य 'श्री मल्लिषेण सूरि' कृत महापुराण, नागकुमार चरित्र एवं 'सज्जन चित्त वल्लभ' ये 3 ग्रंथ ही अभी तक प्राप्त हो सके हैं। किन्तु ये सब ग्रंथ संस्कृत भाषा में लिपिबद्ध हैं। प्राकृत भाषा में आपके द्वारा रचित साहित्य वर्तमान में अनुपलब्ध है। यह हमारा दुर्भाग्य ही है।

प्रवचन सार टीका, पञ्चास्तिकाय टीका (आचार्य श्री कुंदकुंद स्वामी के द्वारा विरचित चौरसी पाहुडों में से दो पाहुडों पर टीका), ज्वालामालिनी कल्प, पद्मावती कल्प, वज्रपंजर विधान, ब्रह्म विद्या और आदिपुराणादि ग्रंथ भी सम्भवतः आपके द्वारा विरचित हों। यद्यपि ये सब कृतियाँ श्री मल्लिषेणाचार्य द्वारा विरचित हैं।

यह 'नाग कुमार चरित्र' लघु कायिक संस्कृत भाषा का पंच सर्गात्मक ग्रंथ है। इस में प्रथम व अंतिम मंगलाचरण सहित 507 श्लोक सन्निहित हैं। इसका कानड़ी

अनुवाद 'बाहुबलि' नामक कवि ने शक् सम्वत् 1507 में किया था। आपके हाथों में प्रस्तुत ग्रंथ का ही हिंदी सारांश है। प्रत्येक सर्ग के अंत में 'इत्युभ्य भाषा कवि चक्रवर्ती श्री मल्लिषेण सूरि विरचिताया श्री नागकुमार पञ्चमी कथायां....." इत्यादि लिखा है। इससे सिद्ध होता है कि कृति आप के द्वारा ही विनिर्मित है।

इस काव्य के प्रारम्भ में आपने लिखा है कि—

कविभि र्जय देवाद्यै र्गद्यै र्पद्यै र्विनिर्मितम्।
यत्तदेवास्ति चेदत्र विषमं मन्दमेधसाम्॥
प्रसिद्धैः संस्कृतै र्वाक्यैर्विद्वज्जन मनोहरम्।
तन्मया पद्य बन्धेन मल्लिषेणेन रच्यते॥

इससे मालूम होता है कि मल्लिषेण के पहले जयदेव नामक किसी आचार्य कवि का हुआ कोई 'नागकुमार' नामक काव्य था किन्तु वह मन्दबुद्धि भव्य जीवों को कठिन था अतः मल्लिषेण सूरि ने सरल व सुबोध संस्कृत श्लोकों में इसे निबद्ध किया है।

इन्हीं आचार्य श्री मल्लिषेण सूरि कृत 'महापुराण' भी विरचित है जो मात्र 2000 संस्कृत के श्लोकों में निबद्ध है। अत्यन्त सरल व सुबोध भाषा में सर्व जन हिताय व सर्व जन सुखाय रूप यह ग्रंथ प्रत्येक संवेगी श्रावक व श्रमण को अत्यंत उपयोगी है। इसमें अनेकों ऐसे विषय वर्णित हैं जो अन्य ग्रंथों में वर्णित नहीं हैं।

महापुराण की प्रशस्ति में आपने अपना परिचय इस प्रकार दिया है।

तीर्थे श्री मुलगन्दनाम्नि नगरे श्री जैन धर्मालये।
स्थित्वा श्री कवि चक्रवर्ती यतियः श्री मल्लिषेणाह्वयः॥

संक्षेपात्प्रथमानुयोग कथन व्याख्यान्वितं श्रृण्वतां।
भव्यानां दुरितापहं रचितवान्निः शेष विद्याम्बुधिः॥

वर्षैक त्रिशता हीने सहस्रे शक भू भुजः।
सर्व जित्वत्सरे ज्येष्ठे सशुक्ले पञ्चमीदिने॥

अनादित समाप्तं तु पुराणं दुरितापहम्।
जीयादाचन्द्रताराकं विदग्ध जन चेतसि॥

श्री जिन सेन सूरि तनुजेन कुहष्टिमत प्रभेदिना।
गारुड मंत्र वाद सकलागम लक्षण तर्क वेदिना॥

तेन महापुराण मुदितं भुवन त्रयवर्ति कीर्तिना।
प्राकृत संस्कृतोभय कवित्वधृता कवि चक्रवर्तिना॥

—महापुराण

इन श्लोकों से विदित होता है कि महाकवि श्री मल्लिषेण सूरि प्राकृत और संस्कृत दोनों भाषाओं के महाकवि ही नहीं, अपितु कवियों के चक्रवर्ती थे। आप व्याकरण, न्याय, आगम, गारुड, मंत्रवाद, आध्यात्मिकता, एवं भिषग् वैदिक के परम पारंगत ज्ञाता थे। आपने बड़े-बड़े मिथ्यादृष्टियों को उन्होंने पराजित कर जिन धर्म की धवल कीर्ति को दिगान्त तक विस्तरित किया था। शक् संवत् 965 की ज्येष्ठ सुदी 5 को उन्होंने तीर्थ के जिन मंदिर में अथवा बसतिका में महापुराण को समाप्त किया था। मुलगुंद नामक ग्राम की आज भी.....प्रांत के धारवाड़ जिले के गदग तालुका ग्राम में उसकी गणना की जाती है।

"सज्जन चित्त बल्लभ" मात्र 25 श्लोकों का छोटा सा संस्कृत भाषा का अत्यन्त प्रभावशाली ग्रंथ है। इस ग्रंथ में मुनियों के शिथिलाचरण दूर करने के लिए समयोचित उपदेश दिया है। पूज्य श्री का इससे अधिक परिचय हमें प्राप्त नहीं हो सका है।

॥इत्यलमति विस्तरेण॥

किसी भी राष्ट्र की समृद्धि व अभ्युदय का मूल्यांकन तत्क्षेत्रस्थ विद्यमान सत्साहित्य एवं वहाँ निवसित जनमानस के निर्मल चारित्र तथा आत्म संतोष की प्रवृत्ति से सहज ही लगाया जा सकता है। जैन दर्शन में संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, मराठी, गुजराती, हिन्दी, अंग्रेजी व उर्दू भाषाओं में विपुल श्रुत साहित्य आज भी विद्यमान है। पापभीरू, सकल संयमी आध्यात्म रस के रसिक पूर्वाचार्यों ने जनता जनार्दन पर महती कृपा करके अपनी आत्मा से करुणा का जो स्रोत बहाया था वह शब्दों की पोशाक पहने भव्य जन का कल्याण करने के लिए उत्सुक है तथा अपने आप की सार्थकता का जीवंत उदाहरण है।

सद्साहित्य की प्राणी मात्र को असद् से सद् की ओर मिथ्यात्व से सम्यक्त्व की ओर, अंधकार से ज्ञान की ओर प्रेरित करने में प्रबल निमित्त साधन है।

प्रस्तुत ग्रंथ 'नागकुमार चरित्र' अभय भाषा कवि चक्रवर्ती परम पूज्य आचार्य भगवन् श्री मल्लिषेण सूरि द्वारा विरचित संस्कृत भाषा का सरल व सुबोध ग्रंथ है। यह ग्रंथ लघु काय होते हुए भी सार्थकता की-अपेक्षा से दीर्घकाल सम है। इस लघु ग्रंथ में श्री

आचार्य महोदय ने चारों अनुयोगों (प्रथमानुयोग, करुणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग) को गागर में सागर की भांति भर दिया है।

प्रस्तुत ग्रंथ के कथानायक श्री नागकुमार जी मगध देशस्य कनकपुर के राजा जयंधर व रानी पृथ्वीदेवी के अत्यन्त पुण्यशाली होनहार पुत्र थे। इनका जन्म का नाम प्रतापंधर था। कुंए में गिरने पर नाग ने उन्हें अपने ऊपर उठा लिया, तब से उनका नाम नागकुमार ख्यात हुआ। इनकी कुल आय 1000 वर्ष थी, जिसमें से 70 वर्ष कुमार काल, 800 वर्ष राज्यकाल एवं 64 वर्ष छद्मस्थ काल (दीक्षा लेने के बाद से केवलज्ञान होने तक के बीच का काल) तथा 60 वर्ष केवली काल रहा था व्याल, महाव्याल (मथुरा के राजा जयवर्मा व पद्मावती के पुत्र) राजकुमारों ने तथा अछेद्य व अछेद्य राजकुमारों ने सुदीर्घ काल तक नागकुमार की सेवा कर (अधीनस्थ रह कर) पुनः नागकुमार के साथ दीक्षा ले, सर्वकर्मों का क्षय कर 'अष्टापद' से मोक्ष प्राप्त किया।

प्रस्तुत ग्रंथ प्रारम्भिक स्वाध्याय प्रेमी साधर्मी बंधुओं के लिए अत्यन्त सरल, रोचक एवं जीवनोपयोगी ग्रंथ है। 'श्री नागकुमार चरित्र' की कथा अत्यन्त प्रेरणादायी एवं वैराग्यप्रद है। इस ग्रंथ की कथा पाठकगण स्वयं पढ़कर आनन्दित होंगे। इस ग्रंथ में कथा का सारांश ही लिखा है अतः प्रस्तावना में कथा का सारांश देना आवश्यक प्रतीत नहीं हुआ।

इस ग्रंथ के प्रकाशन में जो-जो महानुभाव सहयोगी हुए उन सभी के लिए आत्मकल्याण हेतु आशीर्वाद! ऐलक श्री विमुक्त सागर जी, क्षुल्लक श्री विशंक सागर जी को समाधिरस्तु आशीर्वाद एवं मुद्रक अनिल कुमार जी जैन चन्द्रा कापी हाउस आगरा, पुण्यार्जक सुधी श्रावक के लिए धर्मवृद्धि आशीर्वाद।

ग्रंथ के सम्पादक में यत् किंचित् जो त्रुटि रह गई हों, उन्हें सुधी पाठकगण संशोधित करके गुणग्राही दृष्टि बनाकर स्वाध्याय करें तथा त्रुटियों को हमारे पास तक पहुँचाने का सम्यक् पुरुषार्थ करें।

"इत्यलमति विस्तरेण!"

जिनचरणानुचर, संयमानुरक्त

कश्चिदल्पज्ञश्रमणः,

12-6-2001 दरियागंज, दिल्ली

ॐ

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

नाग कुमार चरित्र

पहला परिच्छेद

ग्रन्थ की आदि में मैं सब जीवों का कल्याण करने वाले श्री नेमिनाथ भगवान को नमस्कार करके नागकुमार का पवित्र चरित्र लिखता हूँ। वह इसलिए कि इसके श्रवण पठन से पापकर्म का नाश होता है और पुण्य संचित होता है।

जय देव आदि महाकवियों ने नागकुमार का चरित्र लिखा है, पर उसकी गद्यपद्यमय भाषा कठिन होने से मैं सरल, सुबोध और मुहावरे में आनेवाले छोटे-छोटे वाक्यों में इसे लिखूँगा। मुझे जहाँ तक विश्वास है, इससे बुद्धिमानों का मनोरंजन भी होगा।

जहाँ ऐरावत हाथी मौजूद हों वहाँ और साधारण हाथियों की कुछ गिनती नहीं होती। वे अपने थोड़े से बल वीर्य पराक्रम के द्वारा ही खुश रहते हैं। पर बात यह है कि जिस आकाश में गरूड़ उड़ते हैं उसमें मोर भी अपनी शक्ति के अनुसार उड़ा करते हैं। ठीक उसी तरह जिस मार्ग का बड़े-बड़े आचार्यों ने अनुसरण किया है उसका मैं भी अपनी शक्ति के अनुसरण करूँगा। इतने कहने का सार यह है कि जिस कार्य का मैंने आरंभ किया है उसे अब मैं संक्षिप्त में लिखता हूँ।

जम्बूद्वीप के अन्तर्गत भारतवर्ष में मगध नाम का देश है। मगध की राजधानी राजगृही है। वह अच्छी सम्पत्तिशालिनी है। उसके राजा श्रेणिक

हैं। वे सारे देश का पालन अच्छी तरह करते हैं। उनकी प्रियतमा का नाम चेलनी है। उसके हृदय में जिन भगवान की अत्यंत भक्ति है। इसलिए कवि ने उसे भगवान के चरण कमलों की भ्रमरी करके लिखा है। रोहिणी जैसे लोगों को आनन्द देती है वैसे उसे देखकर सबको आनन्द होता है। वह सीता की तरह पतिव्रता है। इन्द्र जैसे अपनी प्रियतमा शची के साथ सुख भोगता है उसी तरह श्रेणिक महारानी चेलनी के साथ सुखपूर्वक दिन बिताते थे।

एक दिन श्रेणिक राज्यसिंहासन पर बैठे हुए थे। इतने में उनके किसी कर्मचारी ने आकर निवेदन किया कि, "महाराज! श्री वीरभगवान विपुलाचल पर आये हैं।" यह सुनकर श्रेणिक बड़े खुश हुए। उन्होंने भगवान के समाचार लाने वाले को अपने शरीर पर के सब भूषण वस्त्र इनाम में दे दिये, और सिंहासन से सात पैंड आगे आकर भगवान की वन्दना की।

इसके बाद यह आनन्द सूचना शहर में भी दिलवाकर श्रेणिक अपनी प्रियतमा के साथ भगवान की पूजन करने को गये। विपुला चल पर पहुँचकर श्रेणिक ने भगवान को समवसरण में विराजे देखे, उन्होंने उनकी तीन प्रदक्षिणा की, नमस्कार किया और फिर अनेक तरह के अच्छे-अच्छे गन्ध पुष्पादि पवित्र द्रव्यों से भगवान का पूजन किया। पश्चात् गौतम भगवान को वन्दना करके अपने योग्य जगह में बैठ गये और धर्मोपदेश सुनने लगे। वहाँ उन्होंने गौतमस्वामी से पूछा कि, विभो! मुझे पंचमी-व्रत कथा सुनने की इच्छा है, आप कहें तो बड़ी दया हो। मनःपर्यय ज्ञान के धारक गौतमगणधर ने श्रेणिक को इस तरह सुनाना आरम्भ किया:—

हे श्रेणिक! विद्वज्जनों से परिपूर्ण मगध देश बड़ा सुन्दर देश है। वह गन्ने आदि पदार्थों के मनोहर खेतों से युक्त है। उसके चारों ओर अच्छे-अच्छे बगीचे हैं। उन बगीचों में सब प्रकार के फल फूल बड़ी शोभा दे रहे हैं। देश की श्री आसपास के छोटे-छोटे गाँव, खेत, पत्तन और मटंब आदि से और भी बढ़ गई है।

इसी मगध देश में कनकपुर नामका एक सुन्दर नगर है। वह कुँए, सरोवर और बगीचे आदि से शोभित है। सरोवर की शोभा फूले हुए कमलों

से बड़ी मनोहर जान पड़ती है। कनकपुर देशभर में अच्छा प्रसिद्ध नगर है। उसमें बड़े-बड़े धनवान, विलासी और सुखी लोग रहते हैं। इन सब सुख-सामग्री, सौंदर्य और सजधज से कनकपुर को स्वर्ग की उपमा दी जा सकती है।

कनक पुर के राजा का नाम जयंधर था। उसने अपने शत्रुओं को जीत लिया था। वह प्रमुख, मंत्र और कोष, इन तीनों प्रकार की शक्तियों तथा मंत्री, मित्र, खजाना, देश, दुर्ग, बल आदि सात अंगों से युक्त था। काम, क्रोध, मान, लोभ, हर्ष तथा गर्व, ये छह राजाओं के अन्तंरग शत्रु हैं। जयंधर ने इन्हें भी जीत लिया था। जयंधर पर स्त्रियों के लिए अन्धा था, खोटे कामों के करने में आलसी था, दूसरों की निन्दा करने में गूंगा था और जीवों की हिंसा करने में पंगु-अपाहिज था। अर्थात् जयंधर न कभी पर स्त्रियों के साथ रमण करता था, न कभी बुरे काम करता था, न दूसरों की निन्दा करता था, और न कभी जीवों की हिंसा करता था। उसकी प्रियतमा का नाम विशाललोचना था। उसकी चाल को देखकर हंस तक शर्मा जाते थे। उसकी बाणी बड़ी सीधी और मधुर थी।

उनके श्रीधर नामका सुन्दर पुत्र था। वह सब कलाओं का जाननेवाला था, सत्यवादी था, निर्लोभी था। उसमें और भी अच्छे-अच्छे गुण थे।

जयंधर का एक मंत्री था। उसका नाम था नंयधर। वह नीतिशास्त्र का अच्छा जानने वाला था। अपने स्वामी का आदर्श भक्त था। सबके साथ प्रिय भाषण करता था। कहने का अभिप्राय यह कि एक राजमंत्री में जितने गुण होने चाहिए उसमें वे सब विद्यमान थे।

एक दिन की बात है कि जयंधर अपने राजमहल में बैठा हुआ था, इतने में एक सेठ रत्नजड़ित एक सुन्दर चित्रपट लेकर उसके पास आया और उसे अभिवादन कर उसके सामने वह बहुमूल्य चित्रपट रख दिया। राजा ने उसे पान सुपारी देकर पूछा, तुम इतने दिन कहाँ रहे। उत्तर में वासवसेन ने कहा, महाराज! मैं इतने दिनों में लाट देश में था। अभी वहाँ से चला आ रहा हूँ। जयंधर उससे कुछ और भी पूछना चाहता था कि उसकी दृष्टि उस

चित्रपट पर जा पड़ी, जो उसकी आँखों के सामने रक्खा हुआ था। उसने देखते ही चित्रपट को अपने हाथ में उठा लिया। उसमें एक सुन्दरी की भुवनमोहिनी प्रतिमा अंकित थी। उसे देखते ही राजा उस पर मुग्ध हो गया। उसकी हालत एक लिखे हुए चित्र की तरह हो गई। उस समय वहाँ जितने राजकर्मचारी आदि बैठे हुए थे, राजा ने उन सबको अपने-अपने स्थानपर जाने को कह दिया। जब वे सब चले गये तब राजा ने बड़े आदर के साथ वासवसेन का हाथ पकड़कर एकान्त में पूछा कि, कहो तो, यह चित्र किसका है? क्या यह नागकुमारी की मूर्ति है? या गन्धर्ववाला की या किसी विद्या धर-कन्या की? वासवसेन बोला, महाराज! सुराष्ट्र देश में गिरि नगर नाम का एक सुन्दर शहर है। उसके राजा का नाम है श्री वर्मा ओर उसकी प्राणप्यारी का नाम श्रीमती है। उसके एक पुत्र और पुत्री है। उनके नाम क्रम से हरिवर्मा और पृथ्वीदेवी हैं। पृथ्वी देवी हरिवर्मा से छोटी है। उसी का यह चित्रपट लिखकर मैं आपके पास लाया हूँ। सुनकर जयंधर ने वासवसेन को उसके साथ अपना विवाह-सम्बन्ध ठीक करने के लिऐ भेजा। उसके साथ अपने विश्वासपात्र और भी बहुत से नौकरों को भेंट देकर भेजे। वे सब श्रीवर्मा के पास पहुँचे। जयंधर ने श्रीवर्मा के लिए जो उपहार भेजा था उसे उन्होंने उसके सामने समर्पण कर दिया। भेंट स्वीकार कर श्रीवर्मा ने उन्हें उचित पारितोषिक दिया और पूछा कि, कहो, इतनी दूर से किस लिए यहाँ आये हो? जो कुछ कारण हो उसे कहो। यदि वह मेरे करने योग्य होगा तो मैं अवश्य उसे पूरा करूँगा। सुनकर वासवसेन बोला महाराज्! कनकपुर के महाराज जयंधर आपकी राजकुमारी को अपनी प्रियतमा बनाना चाहते हैं। वे अच्छे सुरूपवान तथा विद्वान हैं। उन्होंने हमें इस सम्बन्ध के ठीक करने को भेजा है। श्रीवर्मा ने उत्तर में कहा कि, सोने और मणिका यह संयोग मुझे स्वीकार है। भला कौन ऐसा अभागा है जो ऐसे उत्तम संबंधकों स्वीकार न करेगा ? श्रीवर्मा ने उसी वक्त ज्योतिषियों को बुलवाकर मुहूर्त दिखवाया और अपने जातीय रीति-रिवाज के माफिक उनके साथ पालकी भेजदी। उसके साथ और बहुत से अपने विश्वस्त पुरुषों को भी उसने भेजे। जब वे

जयंधर के पास पहुँचे तब उनका उसने भी अच्छा आदर सम्मान कर पालकी के साथ वापिस भेज दिया। साथ में वासवसेन को भी भेजा। श्रीवर्मा उनका आना सुनकर उनके सन्मुख गया और बड़े उत्सव के साथ पालकी में राजकुमारी को बैठाकर उसे उसने खूब रत्न, धन, भूषण, वसन, ग्राम आदि दिया और इसके बाद बोला, पुत्री! तू महाराज जयंधर की प्रधान प्रिया हो, पुत्रवती हो, महाराज की अनुगामिनी हो। इस प्रकार माता पिता ने शुभाशीर्वाद दे कर उसे विदा किया। उसके साथ-साथ कुछ दूर तक वे स्वयं भी गये।

जयंधर राजकुमारी का आगमन सुनकर बहुत खुश हुआ। राजकुमारी के प्रवेशोत्सव करने के लिए सारे शहर में उसने यह आज्ञा प्रचारित कर दी कि, प्रत्येक घर में उत्सव मनाया जाय और ध्वजा कलशादि से वे अच्छे सजाये जायें। उधर स्वयं जयंधर राजकुमारी के लिवाने के लिये बड़े उत्सव के साथ उसके सामने गया और उसे बड़े आदरसत्कार से लाकर एक अच्छे महल में ठहराया। फिर अच्छा दिन देखकर अग्निसाक्षी से उसके साथ उसने विवाह कर लिया। पृथ्वीदेवी के अतिरिक्त जंयधर की और भी बहुत स्त्रियाँ थीं। जयंधर की इच्छा पूरी हुई। वह सुख से समय बिताने लगा।

एक दिन माली ने आकर जयंधर से प्रार्थना की कि, महाराज! बसंतऋतु का आगमन हो गया है। बन, उपवन में वृक्ष, लताएं फलने-फूलने लगीं हैं। मुझे आज्ञा कीजिये आप कब उस स्थान को सुशोभित करेंगे? मैं सब तरह की तैयारी कर रक्खूं। जयंधर ने अपना आने का समय बतलाकर उसे भेज दिया। इधर आप अपनी प्रियतमा के साथ वनविहार के लिए रवाना हुआ। उसके पीछे ही जयंधर की प्रधान रानी विशाललोचना हाथीपर चढ़कर अपनी प्रिय सखी सहेलियों को साथ लेकर चली। उस समय पृथ्वीदेवी भी अपनी सोने की पालकी में बैठकर हाथीपर चढ़ी बड़े गाजे-बाजे के साथ बनबिहार के लिए जा रही थी। उसकी पालखी को दूर से देखकर विशाल लोचना ने पूछा कि वह पालखी किसकी है? उत्तर में एक सखी ने कहा कि क्या तुम नहीं जानतीं? वह महाराज की अतिशय प्यारी और तुम्हारी भगिनी

है। वह बड़ी सुन्दर है। बहुत दिन हुए जब उसे मैंने देखी थी। आज वनविहार के बहाने से उसकी रूप मधुरिमा का मुझे फिर भी दर्शन होगा।

इधर जब पृथ्वीदेवी ने अपने हाथी की गति रुकी हुई देखी तब पूछा, कि रास्ते में किसने हाथी को रोक दिया है? उत्तर में किसी परिचारिका ने कहा कि, देवी! महाराज की प्रधान रानी की सवारी आगे खड़ी हुई है। जान पड़ता है, आपका आना जानकर वे खड़ी रह गई हैं। पृथ्वी देवी ने सोचा कि वे मुझसे अपना विनय करवाना चाहती हैं। वह तो इतना विचार ही रही थी कि, विशाललोचना का एक साथ मिजाज बिगड़ गया। वह क्रोधित होकर बोली कि, इसे तीन दिन तो महाराज की कृपापात्री बने हुए और अभी से इतना अभिमान, जो मेरा विनय तक नहीं करती? तब देखूँगी इसके अभिमान को जब इसके पुत्र होगा। यह कहती हुई वह वन को चली गई।

बिना कारण के इस प्रकार क्रोधित होकर विशाल नेत्रा के चले जाने पर बेचारी पृथ्वीदेवी को बड़ा रंज हुआ। वह अपने भाग्य को दोष देती हुई बोली, सच है, सौतकी ईर्षा बड़ी बुरी होती है। भले ही उसका कितना ही आदर सम्मान करो, पर वह अपने स्वभाव को नहीं छोड़ती। यह तो मैं आँखों से देख चुकी हूँ कि, मैं महारानी को कितनी चाहती थी, उनका हृदय में कितना आदर करती थी, तब भी वे मुझसे बिना कारण के नाराज होकर चली गई। विशाललोचना के इस तरह चले जाने से पृथ्वीदेवी बड़ी दु:खी हुई। उस दु:ख के मारे इसे वन का जाना भी अच्छा न लगा। वह अपना चित्त शांत करने के लिए वन में न जाकर सीधी जिनमंदिर में चली गई। वहाँ उसने भगवान का पूजन किया और पिहिताश्रव मुनि को नमस्कार कर उनसे उसने निवेदन किया, हे भगवन्! मुझे उस पवित्र धर्म का उपदेश दीजिये, जो जन्म, जरा और मृत्यु के अपार दु:ख का नाश करने वाला, पाप का छेदन करने वाला और सुख का कारण है।

मुनिराज ने इस प्रकार कहना प्रारम्भ किया:—

धर्म के दो भेद हैं। यतिधर्म और गृहस्थधर्म। इनमें यति धर्म उत्तम क्षमा, उत्तममार्दव, उत्तमआर्जव, उत्तमशौच, उत्तमसत्य, उत्तम संयम, उत्तम

तप, उत्तमत्याग, उत्तम आकिंचन और उत्तम ब्रह्मचर्य आदि दश धर्मरूप है। हे पुत्रि! इन क्षमादि के साथ जो उत्तम शब्द लगा है उसका मतलब यह है कि, कारणों के मिलने पर भी चित्त में किसी तरह का विकार न हो। जैसे कल्पना करो कि, एक मुनि को निर्बल पुरुष बहुत कुछ कष्ट पहुँचा रहा है। वे उसका प्रतिकार भी कर सकते हैं। पर आत्मा का स्वभाव अपने में स्थिर रहने का है। इसलिये वे किसी पर राग द्वेष न करके शान्ति के साथ पर कृत उपद्रव सह लेते हैं। क्योंकि राग द्वेष से नवीन कर्मो का बन्ध होता है और उससे संसार में भ्रमण करना पड़ता है।

गृहस्थधर्म के दान, पूजन, शील और प्रोषध, ऐसे चार भेद हैं। इनमें पहला दान है। इसके आचार्यों ने चार भेद किये हैं।

दान का विशेष आगे लिखा है।

हे पुत्रि! एक बात और इसमें समझने की है। देख, दान जब दिया जाय तब यह बात अच्छी तरह जान लेनी चाहिए। कि जिसे दान दिया जाता है वह पात्र है या नहीं। क्योंकि दान के लेने वाले भी दो हैं। पात्र और अपात्र। इनमें पात्र के तीन भेद हैं— उत्तमपात्र, मध्यमपात्र और जघन्यपात्र। उत्तमपात्र वह कहलाता है जो निरन्तर अपना समय स्वाध्याय वा ध्यान में व्यतीत करता हो पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुणों का पालक हो और जिसमें क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष आदि न हों। मध्यमपात्र उसे कहते हैं जो स्वस्त्री सन्तोषव्रत का धारक हो, पंचाणुव्रत का पालन करने वाला हो, सम्यग्दृष्टि हो, और गुरू का भक्त हो। जघन्यपात्र वह है जो व्रतरहित होकर भी सम्यक्त्वी और जिनधर्मपर पूर्ण श्रद्धा रखने वाला हो।

अपात्र वह कहा जाता है जो सम्यक्त्वी न होकर देव, शास्त्र गुरु धर्म की निन्दा करने वाला हो। ऐसे आपात्रों का दान देने से कुछ लाभ न होकर उल्टी हानि ही होती है। पुत्री! देख, जैसे ऊषर भूमि में बीज बोने से कुछ लाभ नहीं होता, वैसे ही आपात्रों में दिया हुआ अन्न निष्फल जाता है। जैसे एक ही कुए का जल नीम और गन्ने में पहुँचता है, पर उसका उपयोग भिन्न भिन्न रूप में होता है—एक में कटुक और एक में मधुर। ठीक उसी

तरह पात्र और अपात्रों में दिये हुए दान की गति होती है। जैसे पवित्र पात्र में घी दूध आदि पदार्थ नहीं बिगडते हैं। पर वे ही किसी खराब पात्र में यदि रख दिये जायं तो बिगड़ जाते हैं। वैसे ही अपात्र में दिया हुआ दान नष्ट होता है। जैसे एक ही कुए का पानी गाय पीती है और सर्प भी। पर गाय का पिया हुआ तो वह दूध रूप में परिणत होता है और सर्प का पिया हुआ विष रूप में। वैसे ही पात्र और अपात्रों में दिये हुए दान का परिणमन होता है। जैसे बट का बीज छोटा होता है पर उसे अच्छे स्थान में बोने से बहुत बड़े वृक्ष के रूप में उसका परिणमन होता है, वैसे ही सुपात्रों को दिया हुआ थोड़ा सा दान भी बहुत फल का देने वाला होता है।

दान— प्रतिग्रह, उच्चस्थान, पादप्रक्षालन, पूजन, नमस्कार, मनशुद्धि, वचनशुद्धि, कायशुद्धि और अन्नशुद्धि, इन नवधा भक्ति पूर्वक आहारादि दान देना चाहिए। हां एक बात और भी ध्यान में रखनी चाहिए। वह यह कि उस समय दाता में नीचे लिखे हुए सात गुणों * का होना आवश्यक है।

श्रद्धा—मेरा आज बड़ा ही सौभाग्य का उदय है जो मुझे ऐसे पवित्र पात्र को दान देने का समय मिला। मैं आज बड़ा ही भाग्यशाली हूँ।

भक्ति—पात्र के समीप रहकर उसके चरणों की सेवा करना।

अलोभीपना—दान देते समय यह ख्याल कभी ध्यान में न रखना चाहिए कि पात्र से मेरा कुछ मतलब सधेगा, इसलिए मैं इसे दान देता हूँ।

दयालुता—किसी कार्य के लिए घर में इधर उधर जाना हो तो बहुत सावधानी से देखकर चलना। जिससे जीव हिंसा न हो।

शक्ति—यह बहुत खाने वाला है, कहीं सब आहार न कर जाय, ऐसी अशक्ति न दिखलाना। अथवा अपनी शक्ति के अनुसार दान देना।

क्षमा—दान के समय स्त्री पुत्रादि द्वारा यदि कुछ अपराध भी बन पड़े तो भी उन पर कुछ क्रोध न करना।

विज्ञता—पात्र या अपात्र आजाय तो उनके गुण दोषों को ठीक-ठीक जान लेना। अथवा आहार में विवेक रखना, कब कौन सी वस्तु दें।

*—अन्य ग्रन्थों में इनके स्वरूप में कुछ भिन्नता है।

पुत्री! पात्रदान का फल ऋषियों ने स्वर्गसुख की प्राप्ति होना बतलाया है। जो स्वर्ग में जाते हैं वे वहाँ स्वर्ग कन्याओं के साथ निरन्तर सुख भोगा करते हैं। उन्हें रोग, शोक आदि किसी प्रकार का दुःख नहीं होता। वे मृत्युपर्यंत निरोग रहते हैं। सत्पात्रों को दान देने से न केवल सम्यग्दृष्टि ही सुखी होते हैं। किन्तु मिथ्या दृष्टि भी भक्ति पूर्वक दान देने से भोगभूमि में उत्पन्न होते हैं। पर अपात्रदान तो सदा ही बुरा है। उसका फल कुगति की प्राप्ति है।

पुत्रि! दान के सम्बन्ध में इतना और ध्यान में रखना चाहिए कि बहुत से लोग सुवर्ण, गाय, कन्या आदि का दान देना अच्छा बतलाते हैं। पर बुद्धिमानों को उक्त वस्तुएँ दान नहीं करनी चाहिए। क्योंकि इनका देना लोगों को दुःख का कारण है। सुवर्ण प्राप्त होने से उसकी रक्षा करने की पात्र को चिन्ता हो जाती है। पृथ्वी दान के निमित्त से उसमें खेती आदि करने से जीवों की हिंसा होती है। गाय दान से उसके बांधने, मारने आदि में उसे कष्ट पहुँचता है। और कन्यादान से राग उत्पन्न होता है। राग से कर्मबन्ध होता है। और कर्मबन्ध से अनन्त संसार की वृद्धि होती है। इसलिए ये सभी दान दुःख के कारण होने से देने योग्य नहीं हैं। दूसरी बात यह है भी कि इन सुवर्ण आदि के दान से कभी तृप्ति नहीं होती है। जैसे ईंधन से अग्नि की और नदियों से समुद्र की। इसलिए भी ये देने योग्य नहीं हैं।

पुत्री! सब दानों में अन्नदान बड़ा उत्तम है। क्यों उससे शरीर का सन्ताप नष्ट होता है और वह जीवन बनाये रखता है। देख, जो मनुष्य अच्छी तरह आहार कर लेता है उसके सामने फिर स्वर्गीय अन्न भी क्यों न आये उसमें उसकी कभी इच्छा तक नहीं होती।

पुत्री! यदि तू दान देने की इच्छा करती है तो तुझे अभय दान भी देना चाहिए। क्यों कि इसमें सबको बड़ा आनन्द होता है। आचार्यों ने इसे संसार का नाश करने वाला बतलाया है। जो लोग मरने से डरते हैं उनके प्राणों की इसके द्वारा रक्षा होती है। वह निर्भय हो जाता है और निर्भय होनेपर वह धर्मसाधन अच्छी तरह करने लगता है। इसलिए फिर वह कुगति में भी नहीं जाता।

जो लोग रोगी होते हैं उनका शरीर विगड जाता है। शरीर के बिग जाने पर फिर वे तपश्चर्या नहीं कर सकते। और तप के अभाव में मोक्षसुख प्राप्त नहीं हो सकता। इसलिए रोगी पात्रों के लिए औषधदान देना चाहिए। इस दान के फल से दाता निरोगी और रूपवान होता है।

ज्ञानदान—पुत्री ! इसी को **विद्यादान** भी कहते हैं। देख, सबसे बड़ा इस दान का महात्म्य है। क्योंकि जो अज्ञानी हैं, जो पवित्र धर्ममार्ग से च्युत होकर संसार में भटक रहे हैं। ऐसे पुरुषों में हित के लिए उन्हें ज्ञानदान देकर उनका भला करना बड़ा ही पुण्य का काम है। इसके लिए शहरों और गावों में पाठशलाएं खुलवानी चाहिए। और जो पहले से हैं उनकी सहायता करनी चाहिए। जिसके पास पढ़ने को पुस्तकादि न हो उन्हें पुस्तक वगैरह देना चाहिए। ज्ञानदान के फल से केवल ज्ञानी होकर मोक्ष में जाता है।

पूजन—जिन भगवान् की प्रतिमाएं बनवाकर जो भव्यपुरुष उनका इक्षु, आम आदि के रस से अभिषेक करते हैं और प्रतिदिन अष्ट द्रव्यों से उनकी पूजन करते हैं वे स्वर्ग में जाकर देवों से पूज्य होते हैं।

शील—शील उसे कहते हैं जिसमें अपने उत्तम व्रतों की रक्षा की जाय! शील का पालन करने से सुगति प्राप्त होती है, दुर्गति नष्ट होती। शील कीर्ति प्राप्त करने का स्थान है। शील शरीर का प्रधान भूषण है। शीलवान पुरुष का सब सत्कार करते हैं। वह सब में श्रेष्ठ माना जाता है।

प्रोषध—पुण्यप्राप्ति के लिए देशव्रती को अष्टमी चतुर्दशी आदि पर्व तिथियों में उपवास करना चाहिए। उपवास करने से पूर्व के पाप कर्म सब नष्ट हो जाते हैं और परम्परा अक्षयपद—मोक्ष की प्राप्ति होती है। पर उपवास मन वचन काय की शुद्धि से किया जाना चाहिए। जैसा कि ऋषियों ने उसके करने का उपदेश दिया है।

पिहिताश्रवमुनि ने उक्त प्रकार जो धर्मोपदेश दिया उसे पृथ्वी देवी ने बड़ी रूचि के साथ सुना। धर्मोपदेश सुनने से उसे बड़ा वैराग्य हुआ। उसने मुनिराज से दीक्षा लेने की प्रार्थना की। पर मुनि बोले कि अभी तेरे पुत्र होगा

इसलिए तुझे दीक्षा लेना उचित नहीं। मुनि के वचनों से उसे बड़ा संतोष हुआ। वह उन्हें नमस्कार कर अपने महल को चली गई और वहाँ आनन्द से रहने लगी।

द्वितीय परिच्छेद

जयंधर वनविहार करके अकेला राजमहल लौट आया। जब पृथ्वीदेवी आई तब उससे जयंधर ने वनविहार के लिए न आने का कारण पूछा। वह बोली कि महाराज! मैं जिनमंदिर चली गई थी। वहाँमुनिराज धर्म का पवित्र उपदेश दे रहे थे। मैं भी सुनने के लिए बैठ गई थी। इसलिए मैं न आ सकी। रानी ने वह उपदेश भी राजा को सुनाया जिसे वह सुनकर आई थी।

रानी का समय सुखपर्वूक बीता। एक दिन वह अपने महल में सोई थी। उसने उस समय दो स्वप्न देखे। एक में तो उसने एक सुन्दर बैल को अपने घर में घुसते देखा और दूसरे में उदित होते हुए बाल सूर्य को देखा।

प्रात:काल हुआ। बाजों की सुन्दर और मुधर ध्वनि रानी के कानों में सुन पड़ी। वह उठी और नित्यक्रिया करके महाराज के पास पहुँची। महाराज से उसने रात को देखे हुए स्वप्नों का हाल कहा। उत्तर में जयंधर ने कहा कि, प्रिये! चलो, जिनमंदिर चलें। वहाँ मुनिराज हैं। उनसे स्वप्न का फल पूछेंगे। ऐसा कहकर वह रानी के साथ जिनमंदिर गया। वहाँ भगवान् की वंदना स्तुति करके वह मुनि के पास पहुँचा और नमस्कार कर उसने उन्हें स्वप्न कह सुनाये। मुनिराज ने उनका फल कहा कि जो स्वप्न में बैल देखा है उससे सूचित होता है कि तुम्हें पुत्ररत्न की प्राप्ति होगी और सूर्य का देखना प्रगट करता है कि वह नियम से केवलज्ञानी होगा।

राजा को पुत्र की बात सुनकर बड़ी खुशी हुई। उसने मुनि से फिर पूछा कि, भगवन्! मैं यह कैसे जान सकूँगा कि मेरा पुत्र ऐसा तेजस्वी होगा। उत्तर में मुनि ने कहा कि देखो, तुम्हारे बगीचे में एक सिद्धकूट जिनालय है। उसमें देवता लोग सदा पूजनादि किया करते हैं। उसका बाहर का दरवाजा बहुत समय से बंद पड़ा है। वह किसी से नहीं खुलता। उसे खोलने के लिए

तुम्हारे पुत्र की चरणरूपी कूंची (ताली) ही समर्थ होगी। उसके अतिरिक्त और भी कई बातें हैं जो तुम्हारे पुत्र को पराक्रमी सिद्ध कर सकेंगी।

जैसे कि उसी जिनालय के पास एक बाबड़ी है। उसमें बहुत से सर्प रहते हैं। तुम्हारा पुत्र खेलता-खेलता उसमें गिर पड़ेगा वहाँ उसे सर्प न काटकर उसकी रक्षा करेंगे। वह एक नीलगिरी नाम के उन्मत्त हाथी को और एक दुष्ट घोड़े को भी अपने पराक्रम के जोर से वश करेगा। इत्यादि बहुत से चिन्हों से तुम अपने पुत्र का परिचय पा सकोगे। मुनि के वचन सुनकर राजा को बड़ा संतोष हुआ। वह उन्हें नमस्कार कर जिनमंदिर में आया और भगवान की स्तुति करके राजमहल लौट आया।

कुछ दिनों के बाद मृगलोचनी पृथ्वी देवी के गर्भ रहा। उसे दाहद (दोहला) उत्पन्न होने लगे। उस की इच्छा मिट्टी के खाने की हुई। इसके बाद ही उस पर (मिट्टी से) ग्लानि आकर उलटी होने का सा उसे भान हुआ। इससे जान पड़ता है। कि उसका पुत्र पृथ्वी का अधिपति और शुद्ध सम्यग्दृष्टि होगा। उसके त्रिवली के भंग से जान पड़ता है कि वह इसी भव में जन्म, मरण और जराका नाश करेगा अर्थात् मोक्ष जायगा।

कुछ दिनों के बाद पुत्र हुआ। राजा ने पुत्र की खुशी में खूब उत्सव कराया, अनाथ, अपाहिज, गरीबों को दान दिया, बन्धु लोगों को खूब सम्मानित किया।

बालक का नाम संस्करण किया गया। प्रतापंधर उसका नाम रक्खा गया। वह दिनों दिन सुदी द्वितीया के चन्द्र की तरह बढ़ने लगा।

एक दिन की बात है कि प्रतापंधर की धाय उसे खिलाने के लिए बगीचे में ले गई। वहाँ जिस जिनमन्दिर का द्वार बन्द था उसके बालक का पांव लग जाने से वह खुल पड़ा। वह बालक को मन्दिर में ले गई। उसने वहाँ भगवान के दर्शन किये।

बालक मन्दिर में खेलने लगा। खेलते-खेलते वह बाहर आ गया। पास ही नागवावड़ी थी। बालक स्वाभाविक बाल-चपलता से खेलता हुआ

वावड़ी में गिर पड़ा। उसमें बहुत से जहरीले सर्प रहते थे। वह गिरा तो सही, पर उसका पुण्य-प्रताप बहुत तीव्र था। इसलिये सर्पो ने उसे न काटकर उसकी रक्षा की, उसे अपने सिर पर उठा लिया।

उधर धाय पूजनोत्सव देखकर जब बाहर आई और उसने बालक को वहाँ न पाया तब उसे बड़ी चिन्ता हुई। उसने बावडी में झाँक कर देखा। देखते ही वह घबड़ा गई। वह रोती हुई दौडी गई और बालक के वावड़ी में गिर जाने का हाल महारानी से उसने कह सुनाया। महारानी सुनते ही दौड़ी आई और आगा पीछा कुछ न सोचकर पुत्र प्रेम से वावडी में जा कूदी। अहा! धन्य इस पुत्र प्रेम को जिसके लिए माता अपना जीवन भी तुच्छ समझती है। यह प्रेम माता में ही होता है।

वह वहाँ की लीला देखकर चकित हो रही। जल घुटने-प्रमाण हो गया। बालक बड़ी निर्भयता के साथ सर्पों से खेल रहा है। तब उसे जान पड़ा कि मेरा पुत्र बड़ा प्रतापी है।

पुत्र के गिरने की खबर राजा के पास भी पहुँची। वह उसी समय वहाँ दौड़ा आया। पर वह जबतक वहाँ पहुँचा उसके पहले ही पुत्र और उसकी माँ बावडी में से निकल आये थे। राजा पुत्र को अक्षत शरीर देखकर बड़ा खुश हुआ। वह उसी समय अपनी प्रिया को लेकर जिनालय में पंहुँचा। वहाँ उसने जिन भगवान की पूजा, स्तुति की और बड़ी खुशी मनाई उसने सर्पों द्वारा अपने पुत्र का इस प्रकार सम्मान देखकर उसका दूसरा नाम नागकुमार रक्खा। इसके बाद वह अपनी प्रिया के साथ राजमहल पहुँचा। मुनि के वचनों की याद कर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई।

जब नागकुमार पांच वर्ष का हुआ तब वह जैनगुरु के पास पढ़ने के लिए भेजा गया। उसकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी। वह थोड़े ही समय में न्याय, साहित्य, सिद्धान्त, विज्ञान गणित, ज्योतिष, अलंकार और चित्रविद्या का अच्छा ज्ञानी हो गया। उसके पाण्डित्य की देश विदेश में खूब तारीफ की जाने लगी।

नागकुमार की प्रसिद्धि सुनकर एक दिन पंचसुगन्धिनी * नामकी वैश्या ने राज सभा में आकर राजा से कहा कि, महाराज! मेरे दो पुत्रियाँ हैं। एक का नाम किन्नरी और दूसरी का नाम मनोहरी हैं वे दोनों बड़ी रूपवती हैं। उन्हें अपनी सुंदरता का बड़ा अभिमान है। वे बीन बजाना खूब अच्छा जानती हैं। मुझे उनका विवाह करना है। किन्तु उसमें उनकी शर्त यह है कि वे जिस समय वीन बजाने को रंगभूमि में उतरें उस वक्त परीक्षा करके जो यह बात बतला देगा कि दोनों में छोटी अमुक है, उसी के साथ वे अपना विवाह करेंगी। नहीं तो वे दोनों ही तपस्विनी हो जायँगी। मैंने राजकुमार की बड़ी तारीफ सुनी है। वे सब विषयों के अच्छे पंडित हैं। तब आप उन्हें मेरी पुत्रियों की परीक्षा के लिए नियत कीजिये। वैश्या के कहे अनुसार राजा ने कौतुकाक्रान्त को पुत्र से कहा कि, कुमार! दिखलाओ अपना पाण्डित्य। महाराज की आज्ञा होते ही दोनों बालिकाएँ राजसभा में बुलवाई गई। वे रंगभूमि में उतरीं। बीन बजाने लगीं। दोनों अपना-अपना कलाकौशल्य दिखलाने लगीं। दोनों दीखने में एकसी दीखती थीं। सर्वसाधारण ही नहीं यहाँ तक कि राजा भी इस विषय में बड़ा ही व्यग्र था कि देखें कुमार कैसे इनकी परीक्षा करता है।

कुमार ने उन दोनों को बीन बजाते समय बड़े ध्यान से देखा। उनकी चाल ढाल देखी। उनके हाव भावों का बड़ी सूक्ष्मता से निरीक्षण किया। उसने थोडी ही देर में अपने मन में निश्चय कर राजा से कहा कि, पूज्यपाद! मैंने जहाँतक परीक्षा की, मुझे जान पड़ा कि, इन दोनों में छोटी बहन किन्नरी है। सुनकर राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने फिर कुमार से पूछा तुमने यह कैसे जान पाया कि किन्नरी छोटी है? इसके लिए प्रमाण क्या है? जिससे ऐसा निश्चय किया जा सके। कुमार बोला, पूज्य! बीन बजाते समय मनोहरी जब किन्नरी की ओर आंख उठाकर देखती थी तब किन्नरी नीची निगाह कर लिया करती थी। इसी से मैंने जान पाया कि किन्नरी छोटी है। पुत्र की परीक्षा देखकर राजा बड़ा खुश हुआ।

---

*—यहाँ 'वैश्या' शब्द से आशय वैश्य (वाणिक) की पत्नी।

नागकुमार की विद्वता देखकर पंचसुगंधिनी को बहुत आश्चर्य हुआ। उसने अपनी पुत्रियों का अभिप्राय जानकर कुमार के साथ उन दोनों का विवाह कर दिया। नागकुमार उनके साथ सुख से समय बिताने लगा।

एक दिन महाराज राजसभा में बैठे हुए थे। इतने में एक पुरुष ने आकर प्रार्थना की कि, महाराज! एक हाथी मत्त होकर शहर में घूम रहा है। सब लोगों को उससे बड़ा त्रास हो रहा है। कितने ही मनुष्य उसने हताहत भी कर डाले हैं। आप उसके पकड़वाने की प्रबन्ध जल्दी कराइए। बड़ी हानि हो रही है। राजा ने सुनते ही अपने श्रीधर नामक पुत्र को आज्ञा की, कि तुम जाकर जल्दी उसके पकड़ने का प्रबन्ध करो। महाराज की आज्ञा सुनते ही वह उसी समय वहाँ से उठकर हाथी को पकड़ने के लिए चला गया। जब उसने हाथी की भयंकर सूरत देखी तो उसके छक्के छूट गये। वह उसे देखते ही भाग खड़ा हुआ और महाराज के पास आकर बड़े भय के साथ बोला कि, हाथी तो बड़ा उन्मत्त हो रहा है। उसका पकड़ा जाना असंभव है। पुत्र की इस प्रकार भीरुता देखकर उन्होंने उसी वक्त नागकुमार से कहा कि, पुत्र जाओ तो एक मत्त हाथी लोगों को बड़ा कष्ट दे रहा है। उसे किसी तरह पकड़कर अपने वश करो। वह पिता की आज्ञा से वहाँ आया जहाँ वह हाथी लोगों को तकलीफ पहुँचा रहा था। उसने अपनी बुद्धि की कुशलता को हाथी को उसी वक्त पकड़ लिया और फिर उसी पर चढ़कर वह महाराज के पास आया। उसने महाराज से बड़े विनय से प्रार्थना की कि यह हाथी आपकी सेवा में उपस्थित है। यह आपके योग्य है। इसे आप स्वीकार कीजिए। महाराज पुत्र की इस विनयशीलता से बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने पुत्र से कहा कि, पुत्र! तुमने इसे वश किया है, इसलिए यह तुम्हारे ही योग्य है। तुम्हीं इसे अपने काम में लाओ। पिता की आज्ञा से वह हाथी को लेकर अपने महल चला गया।

एक दिन नागकुमार ने रास्ते में जाते वक्त देखा कि घोड़े का सईस अपने घोड़े को किसी यंत्र से चारा खिला रहा है। उसने उससे पूछा कि इसे यंत्र से घास क्यों खिलाया जाता है। सईस ने कहा कुमार! यह बड़ा दुष्ट हो गया है। जो इसके पास जाता है उसे लातें मारता है और काटने दौड़ता है।

इसलिए यंत्र द्वारा चारा खिलाया जाता है। सुनते ही कुमार ने घोड़े को बन्धन से मुक्त कर दिया और उस पर चढ़कर उसे इधर-उधर घुमाया। बाद में वह उसे महाराज के पास लिवा ले गया। महाराज से उसने प्रार्थना की कि, प्रभो! यह घोड़ा बड़ा ही उद्धत हो रहा था। मैं इसे पकड़ कर आपकी सेवा में ले आया हूँ। आप इसे स्वीकार कीजिए। राजा ने बड़ी प्रसन्नता से वह उसे ही दे दिया। वह घोड़े को अपने स्थान पर ले गया और सुख से रहने लगा।

एक दिन श्रीधर की माता विशालनेत्रा ने अपने पुत्र से कहा, पुत्र! यह तो कह कि, तुझे भी कोई देश विदेश में जानता है क्या? क्या कोई तेरा नाम भी लेता है? देख तो तेरी सौतेली माँ के पुत्र की सब जगह कितनी प्रतिष्ठा है? सब देश और विदेश में नागकुमार की ही तारीफ की जाती है। मुझे बड़ा दुःख है कि तुझमें कुछ कर्तव्यशीलता नहीं है। तू भी तो एक राजपुत्र है, फिर क्यों नहीं प्रतिष्ठा प्राप्त करने का उपाय करता है, जरा विचार तो, तेरे कारण मुझे दूसरों के सामने कितना नीचा देखना पड़ता है। तुझे कुछ तो अपनी रक्षा का ख्याल करना चाहिए।

माता के कातर वचनों से श्रीधर को भी बड़ी चिन्ता हुई। वह माता से बोला कि, माता! तुम किसी तरह की चिन्ता न करो। मैं अवश्य तुम्हारे वचनों का पालन करूँगा। अपनी इस दशा का मुझे भी बहुत दुःख है। इसके बाद उसने पांच सौ ऐसे योद्धा, जो एक एकहजार शूरवीरों को पराजित करने की शक्ति रखते थे, अपने अधिकार में लिये।

वसन्त ऋतु आयी। कुछ-कुछ गर्मी पड़ने लगी। उपवन सब प्रकार के फल फूलों से सुन्दर दीखने लगा। वृक्षों की डालियों-डालियों पर कोयल का कुहुक रव लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने लगा। लोगों का मन वसन्त-क्रीड़ा के लिए व्यग्र हो उठा। युवा और युवतियों के झुण्ड के झुण्ड वन विहार के लिए जाने लगे। नागकुमार भी अपने समवयस्क मित्रों के साथ जल विहार के लिए गया। उसने बहुत समय तक अनेक तरह की जल क्रीड़ाएं कीं। जब वह जल से बाहर निकला उसी समय उसकी माता उसके लिए सुन्दर वस्त्राभूषण लेकर वहाँ आ पहुँची। उसने पुत्र को बड़े प्रेम

से वस्त्र पहराये। इसके बीच में ही एक घटना और घटी। वह यह कि, जब पृथ्वी देवी वस्त्राभूषण लेकर रास्तें में आ रही थी तब उसने अपने महल पर बैठी हुई विशाल नेत्रा ने देखा। वहीं पर महाराज जयंधर भी बैठे हुए थे। उसने पृथ्वीदेवी की ओर इशारा करके महाराज से कहा कि, प्राणनाथ! देखिए! देखिए! पृथ्वी देवी वस्त्राभूषण लेकर अपने उपपति के पास जा रही है। सुनकर राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। पर जब उसने देखा कि नागकुमार जल से बाहर निकलकर माता के चरणों में गिरा और माता ने वे सब वस्त्राभूषण उसे पहना दिए तब विशालनेत्रा को उसने बहुत धिक्कारा। उधर पृथ्वीदेवी पुत्र को साथ लेकर राजमहल आ गई। इतने में राजा भी वहाँ आ पहुँचा। पृथ्वीदेवी से उसने पूछा कि इस समय तुम कहाँपर गई थीं? पृथ्वीदेवी बोली, अपने प्रिय पुत्र की जलक्रीड़ा देखने गई थी। राजा ने कहा, हां, तो अब से पुत्र को कहीं बाहर न जाने देना। वह महल में रहा करे। यह कहकर वह वहाँ से चल दिया।

इतने में नागकुमार वहाँ आया। उसने माता को चिन्तित देख कर पूछा, कि माता! कहो तुम्हें आज चिंतित क्यों देखता हूँ? क्या किसी ने आपको कष्ट पहुँचाया है? पुत्र के प्रेम भरे वचन सुनकर माता ने कहा, पुत्र! अभी महाराज आए थे। उन्होंने न जाने किस कारण से तेरा महल के बाहर जाना रोक दिया है। क्या मैं, जैसे पिंजरे में तोता बंद कर दिया जाता है वैसे ही तुझे घर में बंद देख सकूँगी? मुझे तो जान पड़ता है कि महाराज श्रीधर को प्राणपण से चाहते हैं और उसे ही वे प्रसिद्ध करना चाहते हैं। इसके सिवा और कोई कारण मैं तेरे बन्द करने का नहीं देखती।

नागकुमार को अपना घर में रहना पसन्द नहीं आया। वह उसी समय हाथीपर सवार हुआ और शहर में घूम-घूमकर शंख पूरने लगा। राजा ने आकस्मिक कोलाहल सुनकर कहा, जाकर देखो यह कोलाहल क्यों हो रहा है और कौन कर रहा है? उसने पीछे आकर महाराज से कहा, देव! वह तो अपने राजकुमार हाथी पर बैठे हुए शंख बजा रहे हैं।

पृथ्वीदेवी द्वारा अपनी आज्ञा का उल्लंघन देखकर राजा को बड़ा

पृथ्वीदेवी द्वारा अपनी आज्ञा का उल्लंघन देखकर राजा को बड़ा रंज हुआ। उसने क्रोध में आकर रानी के वस्त्राभूषण, धन सम्पत्ति आदि सब मंगाकर अपने खजाने में रखवा दिए और उसे एक सामान्य स्त्री की तरह दरिद्रिणी बना दिया।

जब नागकुमार शहर से लौटकर माता के पास आया तब उसने माता की और भी बुरी दशा देखी। माता ने सब हाल पुत्र से कह सुनाया। वह उसी समय वहाँ से उठकर जुआ खेलने के अड्डे पर गया। वहाँ बड़े-बड़े राजा मिलकर जूआ खेल रहे थे। उसने भी उनके साथ खेलना आरंभ किया और थोडी ही देर में उन्हें जीत कर कंगाल बना दिया। वहाँ से वस्त्राभूषण धनादिक लाकर उसने अपनी माता को सौंप दिये।

उधर वे सब राजे मिलकर जयंधर के पास आए और उनसे उन्होंने नागकुमार द्वारा की हुई अपनी सब दुर्व्यवस्था कह सुनाई। जयंधर को नागकुमार की इस धृष्टता पर बड़ा रंज हुआ। उसने उसी वक्त उसे बुलवाया और कहा कि तुम जूआ खेलना खूब जानते हो। अच्छा, देखें तुम्हारी कुशलता इस विषय में कैसी है? आओ मेरे साथ खेलो तो सही। नागकुमार कौतुकाक्रान्त होकर पिता के साथ ही खेलने लग गया। हुआ यह कि उसने थोड़ी ही देर में राजा को भी हरा दिया और उसके खजाने, देश आदि सभी जीत लिये। इसके बाद वह महाराज से बोला कि पूज्यपाद! बस, अब मैं नहीं खेलूँगा। मुझे इतने में ही सन्तोष हुआ। यह कहकर नागकुमार ने खजाने में से अपनी माता के वस्त्राभूषण तो निकाल लिए और अवशिष्ट जितना धन आदिक उसने जीता था वह महाराज को अर्पण कर दिया। इसके बाद वे वस्त्रादि ले जाकर उसने अपनी माता को सौंप दिए।

पुत्र की इस विनयशीलता पर प्रसन्न होकर जयंधर ने उसके लिए अपने शहर ही के पास एक छोटा, पर बहुत सुन्दर नगर बनवा दिया। नागकुमार अपने सुन्दर नगर में अपनी प्रियाओं के साथ सुखपूर्वक रहने लगा।

तृतीय परिच्छेद

इस समय मथुरा का राजा जयवर्मा था। उसकी प्रिया का नाम था जयवती। उनके दो पुत्र थे। उनके नाम व्याल और महाव्याल थे। ये दोनों भाई अच्छे विद्वान् और विनयी थे।

एक दिन राजा जयवर्मा मुनिराज की वन्दना करने को गया। साथ में वह अपने दोनों प्रिय पुत्रों को भी लिवा ले गया। मुनिराज द्वारा उसने धर्म का पवित्र उपदेश सुना। जब मुनिराज उपदेश देकर विरत हुए तब जयवर्मा ने उनसे पूछा, प्रभो! मेरे ये दोनों पुत्र अच्छे शूरवीर हैं। इनमें बल बहुत है इनकी ताकत की समता एक करोड़ शूरवीरों से की जाती है। इसलिए मुझे आपसे इनके विषय में यह बात जाननी है कि क्या इन्हें भी किसी दूसरे की पराधीनता सहनी होगी, या ये अपने ही राज्य में रहेंगे? उत्तर में मुनि ने कहा कि, हाँ, यद्यपि ये दोनों ही भाई बड़े भारी शूरवीर हैं, पर तब भी इन्हें दूसरे की आधीनता स्वीकार करनी पड़ेगी। व्याल का भालस्थ नेत्र जिसके देखने से नष्ट हो जायेगा वही उसका स्वामी होगा। और इस महाव्याल की अपूर्व सुन्दरता देखकर भी जो सुन्दरी इसे न चाहेगी उसका पति इसका स्वामी होगा। मुनि का कथन सुनकर जयवर्मा ने विचारा कि बड़े आश्चर्य की बात है जो ऐसे शूरवीरों को भी दूसरे का नौकर बनना पड़ेगा। कर्म की इस लीला को धिक्कार है। उसे इससे बड़ा वैराग्य हुआ। वह उसी समय व्याल को सब राज्य भार देकर साधु बन गया।

राज्य तो उन्हें प्राप्त हो गया। पर उससे उन्हें सन्तोष नहीं हुआ। उन्हें अपनी दास वृत्ति पर बड़ा ही आश्चर्य हुआ। वे इस बात की खोज में, कि देखें हमारा स्वामी कौन होगा, अपना राज्य मंत्री को सुपुर्दकर पटना को चल दिये।

उस समय पटना का राजा श्रीवर्मा था। उसकी प्रिया श्रीमती थी। इनके एक पुत्री थी। उसका नाम था गणिकासुन्दरी। दोनों भाई पटना पहुँचे। राजमहल के नीचे से होकर जाते वक्त इन्हें राजकुमारी गणिकासुंदरी की एक

दासी ने देखा। वह इनके रूप को देखकर अपनी स्वामिन् के पास दौड़ी गई और बोली, कुमारी! मैंने दो बड़े सुन्दर राजकुमार देखे हैं। उनमें एक तो साक्षात् महादेव सा है और दूसरा कामदेव से किसी बात में कम नहीं है। कुमारी बोली, वे कहाँ हैं? दासी बोली, आइए , मैं आपको बतलाती हूँ। ऐसा कहकर वह कुमारी को अपने साथ लिवा लाई और झरोखे में से दोनों कुमारों को उसने उसे दिखला दिया।

कुमारी महाव्याल की रूप-सुधा का पान करके बड़ी खुश हुई। साथ ही उस पर काम ने अपना आधिपत्य जमा लिया। उसे सारा संसार विना महाव्याल की प्राप्ति के सूना सा दीख पड़ने लगा।

धीरे-धीरे यह बात श्रीवर्मा को मालूम हो गई। वह अपनी पुत्री का उचित जगह प्रेम देखकर बहुत खुश हुआ। उसने बड़ी प्रसन्नता से राजकुमारी का विवाह महाव्याल के साथ कर दिया।

गणिकासुन्दरी की उपमाता (धाय) की भी एक कन्या थी। उसका नाम था ललितासुन्दरी। वह बड़ी सुन्दरी थी। महाराज की अनुमति से ललितासुन्दरी की माता ने उसका विवाह महाव्याल के बड़े भाई व्याल से कर दिया। ये दोनों भाई बड़े सुख चैन से अब पटना में ही रहने लगे।

पटना के पास विजयपुर राजधानी थी। उसका राजा जितशत्रु था। जितशत्रु ने श्रीवर्मा से प्रार्थना की, आप अपनी कुमारी का विवाह मुझसे कर दें। श्रीवर्मा ने उसका विवाह महाव्याल से कर दिया था, इसलिये उसे इन्कार लिख भेजा। जितशत्रु को श्रीवर्मा का यह बर्ताव अच्छा नहीं जान पड़ा उसने जबरन कुमारी का विवाह करने के लिए पटना को जा घेरा। उसके चारों और अपनी सेना नियुक्त कर दी।

व्याल को जब लोगों के द्वारा शहर घेरने का हाल ज्ञात हुआ तब उसने अपने भाई से एकान्त में कहा, श्रीवर्मा ने हमारा आशातीत उपकार किया है इसलिए हमें चुप बैठना उचित नहीं, किन्तु ऐसे वक्त में उसे सहायता देना हमारा परम कर्त्तव्य होना चाहिए। क्यों कि—

न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति।

अच्छा मैं जितशत्रु के पास जाकर उसे समझा देता हूँ कि तुम इस युद्ध में कुछ लाभ न उठा सकोगे। फिर भी यदि वह न माने तो उसका उपाय किया जायगा।

व्याल जितशत्रु के पास गया और उससे बोला कि मुझे महाराज श्रीवर्मा ने तुम्हारे पास यह कहने को भेजा है कि, "तुम यहाँ से अपने देश में वापिस लौट जाओ। इसी में तुम्हारी कुशल है। अन्यथा तुम्हें यम का द्वार देखना पड़ेगा। आदि।"

व्याल के वचनों को सुनते ही जितशत्रु की आंखों में आग बरसने लगी। वह अपने को नहीं सम्हाल सका। म्यान से खड्ग निकालकर वह व्याल को मारने को उस पर झपटा। पर व्याल तो बड़ा शूरवीर था, इसलिए उसका यह कुछ न कर सका। उल्टा व्याल ने ही उसे उसी के दुपट्टे (उत्तरी वस्त्र) से बांध लिया और वहाँ से लाकर अपने भाई के सामने रख दिया। महाव्याल ने उसे श्रीवर्मा के पास पहुँचा दिया। श्रीवर्मा ने उसे कैदखाने में डलवा दिया।

एक दिन व्याल ने भाई से प्रार्थना कर अपने लिए कहीं अन्यत्र जाने की अनुमति ले ली और पटना से निकल कर वह कनकपुर पहुँचा। इधर तो यह शहर के पास पहुँचा और उधर नागकुमार का शहर से बाहर निकलना हुआ। कुमार के दर्शन मात्र से व्याल का तीसरा नेत्र नष्ट हो गया। जब नेत्र के नष्ट होने का हाल उससे लोगों ने कहा और स्वयं भी उसने हाथ ललाट पर फेरकर देखा तो उसे वह नेत्र नहीं दीख पड़ा। यह प्रताप उसने कुमार का ही समझा। तब वह कुमार के पास गया और उससे बोला कि कुमार! आप बड़े पुण्यशाली महात्मा हैं। मेरी इच्छा आपके चरणों की सेवा करने की है। आप कृपा करके मुझे अपना दास बनाइए।

नागकुमार ने उसे एक अच्छा उत्साही युवक देखकर अपने पास रख लिया। इसके बाद उसे अपने साथ-साथ वह घर पर लिवा ले गया। घर पर पहुँचकर कुमार ने व्याल को तो घर की रक्षा के लिए द्वार पर नियुक्त किया और आप भीतर चला गया। व्याल अपना कर्त्तव्य पालन करने के लिए द्वारपर ही खड़ा रहकर पहरा देने लगा।

व्याल खड़ा-खड़ा पहरा दे रहा था कि इतने में बहुत से योद्धा सजे हुए उसी की ओर आए। उन्हें देखकर इसने द्वारपालों से पूछा कि ये सब कहाँ जा रहे हैं?

द्वारपालों ने कहा, अपने कुमार का एक सौतेला भाई है। उसका नाम श्रीधर है। उसी के ये योद्धा हैं। ये बड़े क्रूर हैं। ये हर समय इस चिन्ता में रहा करते हैं कि कभी मौका मिले और कुमार को मार डालें। उनकी बात सुनकर व्याल अपने क्रोध के तीव्र वेग को नहीं रोक सका। उसने उसी वक्त हाथी बांधने के खंभे को उखाड कर उन्हें आड़े हाथों मारना शुरू किया। कितने ही सुभटों को तो उसने वहीं प्राण रहित कर दिया और वेचारे कितने ही प्राण लेकर भाग निकले।

इस घटना का हाल सुनकर कुमार बाहर आया और व्याल की वीरता की बड़ी तारीफ करने लगा। वहाँ आये क्षणभर भी न बीता होगा कि तुरंत ही श्रीधर अपने और योद्धाओं को लेकर कुमार पर आ चढ़ा।

श्रीधर की युद्ध के लिए चढ़ाई सुनकर कुमार भी निश्चिन्त न बैठकर उसी वक्त हाथीपर सवार हुआ और युद्धभूमि में आ डटा।

पुत्रों के युद्ध की बात पिता के पास पहुँची। जयंधर ने उसी समय अपने मंत्री को भेजकर कहा कि तुम जल्दी जाकर युद्ध को रोक दो। मंत्री ने जाकर दोनों भाइयों को समझाया और उन्हें युद्ध करने से रोका। दोनों भाई अपने-अपने महल लौट आये।

मंत्री सीधा युद्धभूमि से महाराज के पास आया और बोला, प्रभो! यह आपस का द्वेष तबतक न मिटेगा जबतक आप दोनों में से किसी एक को कुछ दिनों के लिए अपने शहर से अलग न कर देंगे। और तभी ये दोनों कुशलतापूर्वक रह भी सकेंगे।

राजा बोला, तुम कहते हो वह ठीक है। अच्छा तो श्रीधर को जाकर कह दो कि वह यहाँ से चला जाये। मैं नागकुमार के विषय में उसकी कुटिलता बहुत दिनों से देख रहा हूँ। उसका हृदय बड़ा मलिन है।

मंत्री ने कहा, महाराज! आपका कहना यथार्थ है और इस में कोई सन्देह नहीं कि श्रीधर नागकुमार से शत्रुता रखता है। पर तब भी मैं उचित यही समझता हूँ कि नागकुमार को अलग किया जाय। इसका कारण है, कि मैं श्रीधर में ऐसा कोई गुण नहीं देखता कि वह विदेश में अपना पेट तक भी भर सकेगा, किन्तु मुझे विश्वास है कि वह भूख-भूा चिल्लाता-चिल्लाता ही मर मिटेगा। इसलिए उसपर तो आप दया ही करें। और नागकुमार अच्छा उद्योगी और साहसी है, साथ में पुण्यशाली भी है। उसे आप अलग भी कर देंगे तो वह अपना निर्वाह खूब अच्छी तरह से कर सकेगा। बल्कि यह समझिये कि विदेश में वह अच्छी कीर्ति प्राप्त करेगा। आप देखते नहीं कि वह कितना तेजस्वी है?

राजा ने कहा, जैसा तुम उचित समझो वही करो। मैं तो यह चाहता हूँ कि , इन दोनों का द्वेष मिट जाय।

मंत्री वहाँ से सीधा नागकुमार के पास गया और उसे महाराज की आज्ञा कह सुनाई।

नागकुमार बुद्धिमान् था। वह पिता की कठोर आज्ञा से कुछ भी विचलित न हुआ। वह मंत्री से यह कहकर कि, मुझे महाराज की आज्ञा स्वीकार है, अपनी माता के पास गया और उससे सब हाल उसने कह दिया। साथ में अपना जाना भी उसने माता को बतला दिया।

इसके बाद वह अपनी प्रेयसी के पास गया और उसे साथ लेकर उसी वक्त वहाँ से रवाना हो गया।

जिस दिन नागकुमार गया उस दिन सारे शहर को बड़ा दुःख हुआ। भला, प्रजाप्रिय राजपुत्र का जाना किसे दुःखकर न होगा? यहाँ तक कि व्यापारियों ने उस दिन हड़ताल करदी।

नागकुमार वहाँ से चलकर मथुरा में पहुँचा। वहाँ वह एक देवदत्ता नामकी ब्राह्मणी के यहाँ ठहरा। देवदत्ता ने इसकी खान पानादि से पाहुनगति की। नागकुमार ब्राह्मणी की उदारता पर बड़ा खुश हुआ।

दूसरे दिन भोजनोपरान्त नागकुमार शहर में जाने को उद्यत हुआ। उसे शहर में जाने के लिए तैयार देखकर देवदत्ता बोली, पुत्र! शहर न जाओ। कुमार बोले, माता! क्यों?

देवदत्ता ने कहा, यहाँ का राजा बड़ा दुष्ट है। वह कन्याकुब्जपुरी के राजा की राजकुमारी सुशीला को, जिसका सिंहपुरी के राजा हरिवर्मा के लिए देना निश्चित हो चुका था, जबरन हरकर अपने यहाँ ले आया है और उस बेचारी को अपने साथ विवाह करने को बाध्य करता है। कुमारी उसे पसन्द नहीं करती। इसलिये उस पापी ने बेचारी को कैदखाने में डलवा दिया है। वह वहाँ पड़ी-पड़ी बड़ी दीनता के साथ जो वहाँ से होकर निकलता है उसी से रो रो कर अपने उद्धार की प्रार्थना किया करती है। उसका रोना आंखों से नहीं देखा जाता है। पर कठिनता यह है कि उस दुष्ट राजा के पास किसीकी नहीं चलती। जो उसके उद्धार की चेष्टा करता है, राजा उसे ही भयानक दंड देता है। मुझे विश्वास है कि तुम उसकी वह हालत नहीं सह सकोगे। तुम्हारे दयालु हृदय में जो 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना समा रही है वह उसका उद्धार कराये बिना तुम्हें कभी पीछे न लौटने देगी। संभव है तुम उस में सफलता प्राप्त न कर सको तो बड़ी विपत्ति के आने की संभावना है। इसलिए मैं चाहती हूँ कि तुम बाजार में न जाकर यहीं सुख से रहो।

कुमार ने कहा, माँ! तुम इसकी चिंता न करो कि मुझे किसी तरह की तकलीफ नहीं उठानी पड़ेगी। मैं बड़ी कुशलता से इसमें सफलता प्राप्त करूँगा। इसपर भी यदि कुछ घटना हो जाय तो मुझे उसकी कुछ परवाह नहीं। क्योंकि यह जीवन यदि दूसरों के लिए काम न आया तो इसे निस्सार ही समझना चाहिए। कुछ हो, मैं तो एक वक्त उसके पास अवश्य ही जाऊँगा और जिस तरह बन पड़ेगा उसके बचाने की चेष्टा करूँगा। इतना कह कर नागकुमार देवदत्ता के उत्तर की कुछ प्रतीक्षा न कर चल दिया। वह वहाँ पहुँचा जहाँ सुशीला रो रो कर अपना जीवन बिता रही थी। उससे उसका रोना न देखा गया। वह सुशीला से बोला, राजकुमारी! तुम अब किसी तरह की चिंता न करो। मैं तुम्हारा इस दुर्दशा से अवश्य उद्धार करूँगा। ऐसा कहकर

उसने अपने नौकरों को आज्ञा दी कि इन पहरेदारों को बांधकर इसे अपने स्थान पर लिवा ले चलो। नागकुमार की आंज्ञा का उसी वक्त पालन किया गया। सुशीला बंधन से निर्मुक्त कर दी गई।

अपने नौकरों की दुर्दशा और सुशीला का छुड़ा ले जाना सुनकर दुष्टवाक्य को बड़ा क्रोध आया। वह उसी वक्त सेना लेकर युद्ध के लिए नागकुमार पर जा चढ़ा।

उधर व्याल नीलगिरी नाम के हाथी को पानी पिलाकर आ रहा था। इस युद्ध का कोलाहल उसे सुनाई पड़ा। वह भी वहाँ आकर उपस्थित हो गया। उसके आते ही दुष्टवाक्य की नजर उस पर पडी और उधर से व्याल ने भी उसे पुकारा। दुष्टवाक्य झट से उसके पास आया और बोला, प्रभो! क्षमा कीजिए। मेरी गल्ती हुई जो मैंने कुमार के विरुद्ध शस्त्र उठाया। उसे विनीत देखकर व्याल नागकुमार के पास ले गया और कुमार से प्रार्थना कर उसका अपराध क्षमा करवाया। इसके बाद व्याल ने कुमार को अपने इधर आने का सब हाल सुना दिया। व्याल की कार्य कुशलता सुनकर कुमार बड़ा संतुष्ट हुआ।

कुमार ने सुशीला को हरिवर्मा के पास, जिससे कि पहले उसकी शादी होना निश्चित हो चुका था, भेजदी। कुमारी अपने अभीष्ट प्रियतम को प्राप्त कर बहुत प्रसन्न हुई।

नागकुमार इस समय पूर्ण युवावस्था को प्राप्त था। वह एक दिन बगीचे की सैर करने को जा रहा था। उस वक्त उसने बहुत से लोगों को, जो अपने कन्धों पर बीन रखे हुए थे, जाते देखा। उसने उनसे पूछा आप कहाँ से आ रहे हैं?

उनमें से एक आगे होकर बोला, हम इस समय काशमीर से आ रहे हैं।

कुमार-क्या वह आपका खास देश है?

एक-नहीं, हम वहाँ इसलिए गये थे कि वहाँ के राजा की कुमारी बड़ी रूपवती है। उसका नाम त्रिभुवना है। उसकी प्रतिज्ञा है कि जो मुझे बीन

बजाने में हरा देगा उसी के साथ मैं अपनी शादी करूँगी। हम लोग उसी की प्राप्ति के लिए गये थे, पर हमें यह कहते हुए शर्म लगती है कि वह अपने विषय में बड़ी विदुषी निकली। उससे हमें हार जाना पड़ा। अब हम वापिस अपने वतन को जा रहे हैं। कुमार! मैं एक राजकुमार हूँ। मेरे पिता सुप्रतिष्ठ देश के अधिपति हैं। उनका नाम शक प्रसिद्ध है। इतना हाल कहकर कीर्तिवर्मा वहाँ से आगे बढ़ा।

कीर्तिवर्मा की बातों से नागकुमार की भी उत्कण्ठा काश्मीर जाने की हुई। वह कुछ दिनों के बाद काश्मीर के लिए रवाना हुआ। जब वह काश्मीर पहुँचा तब वहाँ के राजा ने उसका अच्छा सत्कार किया। उसे बड़े उत्सव से शहर में प्रवेश कराया। कुमार ने अपने आने का कारण उससे कह सुनाया। उसे यह जानकर बड़ी खुशी हुई कि कुमार उसकी राजकुमारी के साथ विवाह की इच्छा से आया है।

दूसरे दिन रंगभूमि तैयार की गई। कुमार और कुमारी बीन बजाने को उतरे। दोनों अपनी अपनी चतुरता परिश्रम से बतलाने लगे। आखिर कुमार ने विजयलक्ष्मी प्राप्त की। उपस्थित मंडली ने कुमार के पाण्डित्य की बड़ी तारीफ की। उन्हें इस वरवधू की जोड़ी से बड़ी खुशी हुई। त्रिभुवना ने भी अपने को धन्य माना। नन्द ने पुत्री की प्राप्ति के अनुसार नागकुमार के साथ उसकी शादी कर दी। नव युगल सुख से समय बिताने लगे।

एक दिन नागकुमार राजसभा में बैठा हुआ था। इतने में वहाँ एक साहुकार आया। वह देश विदेश की सैर करने चला आ रहा था। नागकुमार के इस कौतुक से कि, वह देश विदेश में खूब घूमा हुआ है, उससे पूछा, तुमने सैर तो बहुत की है, अच्छा कोई आश्चर्य की बात भी देखी हो तो बताओ।

साहुकार बोला, कुमार! मुझे पहले यह विश्वास नहीं था कि भूत प्रेत सचमुच में होते हैं। पर जब मैं भूमितिलक नगर में आया तब उसके बाहर रम्यक नाम के बगीचे में देखा कि वहाँ एक मनुष्य बैठा-बैठा सब दिन चिल्लाया करता है और कहता है कि मेरी स्त्री को एक राक्षस यहाँ से उठाकर ले गया है। वह पास की गुफा में रहता है। वह चाहता है कि मुझे कोई इस

आफत से छुड़ा दे। इसी लिए उस ओर जो आता है उसी से अपनी पत्नी के छुड़ाने की प्रार्थना किया करता है। मेरे सामने बहुत से लोग हिम्मत कर करके उसके छुड़ाने की कोशिश करने लगे, पर किसी को सफलता प्राप्त नहीं हुई। जो राक्षस की गुफा में जाते थे वे फिर वहाँ कुछ न कुछ प्रसाद बिना पाये नहीं लौटते थे। मुझे तो उस विचित्र घटना से बड़ा आश्चर्य हुआ।

नागकुमार ऐसी बात सुनकर कब निश्चिन्त बैठने वाला था। वहाँ अब उसे क्षण भर भी रहना मुश्किल हो गया। उसके दिल में उक्त घटना को देखने की बड़ी उत्कण्ठा बढ़ गई। उसने उक्त सब हाल महाराज नन्द से कह सुनाया और उनसे जाने के लिए प्रार्थना की। कुमार का अधिक आग्रह देखकर नन्द उसे रोक न सके। वह अपनी प्रिया को साथ लेकर वहाँ से चल दिया और थोड़े ही दिनों में घटना स्थल पर जा पहुँचा।

दूसरे दिन वह भोजनादि से निवृत्त हुआ। बारह बजे होंगे। इतने में बगीचे की एक ओर से उसके कानों में रोने की आवाज आई। जिधर से वह आ रही थी उधर ही वह गया। पहुँच कर उसने देखा कि एक मनुष्य रो रहा है। उसने उससे पूछा:—

कुमार—तुम कौन हो?

मनुष्य—महाराज! मैं पारधी हूँ।

कुमार—तुम्हारा नाम क्या है?

मनुष्य—जी, रम्यक।

कुमार—किस लिए तुम अभी रोते थे?

मनुष्य—महाराज! मेरी स्त्री को एक राक्षस ले उड़ा है।

कुमार—क्या तुम्हें उसके रहने की जगह मालूम है?

मनुष्य—कुमार! सामने ही गुफा है। उसी में मैंने उसे घुसते देखा था।

कुमार—चलकर उसे बताओ तो।

मनुष्य—महाराज! मेरी हिम्मत वहाँ जाने की नहीं पड़ती।

कुमार—तब?

मनुष्य—हां दूर रहकर दिखा सकता हूँ।

कुमार—अच्छा, चलो!

इसके बाद कुमार को लेजाकर उसने गुफा दिखा दी। कुमार बड़ी निर्भयता के साथ उसमें जा घुसा। वहाँ उसने एक भयंकर राक्षस देखा। पर उसकी कुछ परवाह न कर उसके पास वह चला ही गया।

राक्षस कुमार का प्रतापी चेहरा देखकर स्तंभित हो गया। उससे कुमार के विरुद्ध कुछ नहीं बन पड़ा। उसने उल्टा कुमार का सम्मान किया और उसके सामने हाथ जोड़कर प्रार्थना की, स्वामी! इस दास पर क्या आज्ञा होती है?

कुमार ने कहा, तुमने उस बेचारे गरीब की स्त्री को अपने पास लाकर बड़ा अन्याय किया है। तुम्हें उचित है कि तुम उसे वापिस लौटा दो।

राक्षस ने उसी समय स्त्री को लाकर कुमार के सामने खड़ी कर दी और बोला, प्रभो! मेरा अपराध क्षमा कीजिए। इसके अतिरिक्त उसने चन्द्रहासखड्ग और एक कासकरंडक नामकी शय्या कुमार को भेंट की।

वहाँ से निकलकर कुमार उसी पारधी के पास गया और उसे उसकी स्त्री सौंपकर उसने फिर पूछा, क्या इस उपवन में कुछ और भी देखने की वस्तु है?

पारधी बोला, वह देखिए एक और गुफा है, उसे आप अवश्य देखें। वह देखने योग्य है।

कुमार उसे देखने को वहाँ से चला। उसके पास जाकर वह देखता है तो उसे एक बड़ी खूबसूरत सुन्दरी गुफा के द्वारपर हाथ में सोने का कलश लिए खड़ी हुई मिली।

कुमार के पहुँचते ही उसने उसके जल से पांव धोये और विनीत होकर वह कुमार से बोली, स्वामी! गुफा के भीतर प्रवेश कीजिए।

कुमार उसके कहने से गुफा के भीतर गया। उस स्त्री ने कुमार को एक अच्छे आसन पर बिठलाया और बोली, कुछ आज्ञा कीजिए।

कुमार बोला, पहले तुम यह बताओ कि तुम कौन हो और किस लिए यहाँ आई हो?

वह बोली, मेरा नाम सुदर्शना है। मैं एक देवी हूँ। यहाँ आपही के लिए ठहरी थी। यहाँ और भी बहुत सी देवियाँ हैं। इतने दिन तक मैंने उनकी रक्षा की। अब आप आ गये हैं। उन्हें ग्रहणकर उनकी रक्षा कीजिए। वे सब देवियाँ एक एक विद्या की स्वामिनी हैं।

कुमार ने कहा, बात क्या है, खुलासा कहो।

सुदर्शना बोली, मलकापुर नाम का एक शहर है उसके राजा का नाम विद्युत्प्रभ है। वह विद्याधर है उसकी रानी का नाम विमलप्रभा है। उनका एक पुत्र है। उसका नाम है जितशत्रु। उसने इसी गुफा में बारह वर्ष तक विद्या साधना की। आकाशगामिनी आदि बहुत सी विद्याएं उसे सिद्ध भी हो गईं।

इसी पर्वत की अन्तिम गुफा में एक सुवृत्त नाम के मुनि ध्यान किया करते थे। वे बड़े तपस्वी थे। यहीं उन्हें केवल ज्ञान हुआ। उस समय देवता लोग उनकी पूजन के लिए आये। उनके बाजों का शब्द सुनकर जितशत्रु ने एक विद्या को इसलिए भेजी कि देखो, क्या है? यह बाजों का शब्द कहाँ से आता है? उसने पीछे आकर कहा, सुवृत्तमुनि को केवलज्ञान हुआ है। इसलिए देवता उनकी पूजन करने को आये हैं।

सुनकर जितशत्रु भगवान के दर्शन करने को गया। वहाँ उसने धर्मोपदेश सुना उपदेश का प्रभाव उसके हृदय पर बहुत पडा। उसे एक साथ संसार से वैराग्य हो गया। उसने भगवान से दीक्षा के लिये प्रार्थना की। उसे दीक्षा दी गई। वह साधु हो गया। तब हमने उससे कहा, तुमने बहुत कष्ट सहकर हमें प्राप्त किया। हमारे द्वारा तुम्हें कुछ लाभ भी नहीं हुआ। ऐसी हालत में तुम्हारा कष्ट उठाना और हमारा आना निष्फल ही हुआ। ऐसा करना

तुम्हें ठीक नहीं था।अस्तु। तो अब बतलाइए, हम किसकी आधीनता में रहे? उसने भगवान से पूछकर कहा, एक राजकुमार, जिसका नाम नागकुमार है, यहाँ आयेगा। उसी की आधीनता में तुम रहना। उसने हमें आपके आने का दिन भी बतला दिया था। तभी से हम यहाँ रहती हैं। आज आपके आने का दिन था। इसी लिए मैं सोने का कलश लेकर आपकी प्रतीक्षा कर रही थी। आप भी हमारे पुण्य से यहाँ आगये। हम सब आपकी सेवा करने को तैयार हैं। आज्ञा दीजिए।

नागकुमार उन्हें यह कहकर चला गया कि, अच्छा तुम स्वच्छन्द आनन्द से रहो, पर जब किसी काम के लिए मैं तुम्हें याद करूँ तो वहाँ उपस्थित होना।

कुमार वहाँ से निकलकर फिर उसी पारधी के पास आया। उसने उससे पूछा कि इसके अतिरिक्त कहीं और भी तुमने कोई आश्चर्य की बात सुनी है क्या? वह बोला, यहाँ से उत्तर दिशा की ओर कुछ दूरपर एक पिशाच की मूर्ति बनी हुई है। वह दीखने में बड़ी भयानक है। उसके पास जाने की हिम्मत किसी को नहीं होती। वह ऐसी बुद्धिमानी से बनाई है कि जो उसके पास जाता है उसका फिर निर्विघ्न आजाना असंभव है।

सुनते ही कुमार को उसके देखने की बड़ी उत्कण्ठा हुई। वह वहाँ जा पहुँचा। उसने बड़ी बारीकी से उस मूर्तिका निरीक्षण किया और उसमें जो 2 बातें आश्चर्यजनक थीं उन्हें जानलीं। उसके बाद वह बड़ी निर्भीकता के साथ उसके पास चला गया और उस मूर्ति का एक पांव खींचकर उसने उसे नीचे गिरा दी। उसके नीचे से एक खजाना निकला। उसमें एक शिलालेख रक्खा हुआ था। कुमार ने उसे उठाकर पढ़ा उसमें लिखा था कि, "जो इस पिशाच मूर्ति को गिरा देगा वह इसके नीचे गढ़े हुए धन का मालिक होगा।"

शिलालेख को बाँचकर उसने विद्या की अधिष्ठात्री देवियों को याद किया और उन्हें उस धन की रक्षा का भार सौंपकर आप वहाँ से चल दिया। रास्ते में उसे एक मुनिराज आते हुए दीख पड़े। वह उनके पास गया और उन्हें नमस्कार कर वहाँ से कहीं अन्यत्र जाने के लए रवाना हुआ।

एक गिरिकूट नाम का शहर है। उसके राजा का नाम वनराज था। वनराज की रानी थी वनमाला। उनके एक पुत्री थी। उसका नाम था लक्ष्मीमती। वह बड़ी विदुषी और रूपवती थी। रति उसकी नयन-सुन्दर रूपमधुरिमा को देखकर अपना जन्म निस्सार समझती थी।

वनराज ने एक दिन अवधिज्ञानी मुनि से पूछा, भगवन्! मेरी कुमारी का स्वामी कौन होगा ?

मुनि बोले, शहर के बाहर एक बड़ा भारी बड़ का झाड़ है। किन्तु वह वर्षों से सूखा पड़ा हुआ है। जिस महापुरुष के उसके नीचे बैठने से उस पर अंकुर फूट निकलेंगे वही उसका स्वामी होगा। इसलिए वहाँ हर वक्त एक मनुष्य इस बात के देखने को रहना चाहिए।

नागकुमार रम्यक वन से निकलकर गिरिकूट शहर की ओर आया। बहुत दूर के श्रम को मिटाने की इच्छा से उस उक्त बड़ के नीचे बैठ गया। उसके बैठते ही वर्षों का सूखा वृक्ष एक साथ अंकुरित हो उठा। वह आदमी, जिसे वनराज ने इसी बात की निगरानी के लिये नियुक्त किया था, नागकुमार के पास आया और उसने वनराज की सब बातें उसे कह सुनाईं। इसके बाद वह कुमार से यह कहकर चला गया, कि मैं अपने मालिक को आपके आने की सूचना दे आऊँ, तब तक आप यहीं पर ठहरें।

अतिध्वज के द्वारा वनराज नागकुमार के आने के समाचार सुन कर बड़ा खुश हुआ। वह उसी समय बड़े ठाट-बाट से कुमार को शहर में लिवा ले जाने को उसके सामने आया। शहर में उसे ले जाकर वनराज ने उसकी खूब पाहुनगति की। इसके बाद उसने अच्छे दिन में अपनी पुत्री का विवाह नागकुमार से कर दिया और उसे खूब दहेज दिया।

नागकुमार वहाँ आनन्दपूर्वक समय बिताने लगा; पर उसके हृदय में यह प्रश्न बार-बार उठा करता था कि वनराज कौन है ? कैसे इसका नाम वनराज पड़ा है ? इस शहर की स्थिति से जान पड़ता है कि यह थोड़े ही समय से बसा है ? ये सब बातें क्या हैं ? वह इनके जानने के लिये उत्कण्ठित रहता था।

एक दिन नागकुमार को दो मुनियों के दर्शन हुए। उनके नाम जय और विजय थे। उसने समय पाकर उक्त बातें मुनियों से पूछीं। तब उनमें से जय नामक मुनिराज ने कहा—

एक पुण्ड्रवर्धन पुर है। उसका राजा है सोमप्रभ। वह वन राज़ा का रिश्तेदार है। सोमप्रभ के दादा ने वनराज के दादा को अपने शहर से निकाल दिया था। वे आकर इस जगह रहे। यहाँ कई पीड़ियों के बाद यह वनराज हुआ। तब इसने अपनी बुद्धि और हिम्मत से धन और यश प्राप्त कर शहर बसाया। उसका नाम गिरिकूट रक्खा। नागकुमार की उत्कण्ठा मिटी। वह मुनियों को नमस्कार कर अपने महल चला गया। उसने वहाँ जाकर एक स्तंभ में यह सब बातें, जैसी कि मुनिराज ने कही थीं, खुदवादीं।

इसके बाद व्याल को बुलाकर उसने कहा, तुम पुण्ड्रवर्धनपुर जाकर वहाँ के राजा सोमप्रभ से कहो कि, मुझे नागकुमार ने आपके पास भेजकर मेरे द्वारा यह सन्देश कहा है कि, आप गिरिकूट को अपने अधिकार में से छोड़ दीजिए। व्याल ने सोमप्रभ से जाकर उक्त हाल कहा। सुनते ही उसे बड़ा क्रोध आया। वह उसे बरदाश्त न कर सका। उसने कहा, ऐसा कहने वाला अन्यायी है। उसने क्या समझकर ऐसा मुझे कहलवाया। मैं उसके इस अन्याय को नहीं सह सकता। उससे जाकर कह दो कि यदि तुम अपना हित चाहते हो तो पिता के ही पास रहो। कहीं बाहर न निकलो। जान पड़ता है वह देश विदेश में ऐसा अनर्थ करने के लिये ही घूमता है। उसे अपनी दुष्टता छोड़ देनी चाहिए। नहीं तो उसके लिये यह बहुत हानिकार होगी।

व्याल से अपने मालिक की बुराई सहन नहीं हुई। वह यद्यपि केवल सन्देशा कहने को गया था, किन्तु उसे स्वामी-भक्ति के वश होकर सोमप्रभ के विरुद्ध कार्य करना पड़ा। उसने उसी समय अपने बल से बांध लिया और वह हाल नागकुमार के पास लिख भेजा।

पत्र पढ़कर नागकुमार वनराज को लेकर पुण्ड्रवर्द्धनपुर गया। वहाँ सोमप्रभ की अवस्था पर उसे बड़ी दया आई। उसने व्याल से कहकर सोमप्रभ को छुड़वा दिया। और आप लक्ष्मीमती के साथ वहीं कुछ दिनों के लिये ठहर गया।

उधर सोमप्रभ को अपने पर नागकुमार के अनुग्रह से बड़ा शर्मिंन्दा होना पड़ा। उसे कर्मों की इस लीला से बड़ा वैराग्य हुआ। वह अपने उत्कृष्ट वैराग्य को नहीं रोक सका। उसने उसी वक्त जाकर यमधृत मुनि से जिनदीक्षा ग्रहण कर ली। वह थोड़े ही समय में अच्छा तपस्वी हो गया। कठिन से कठिन तपश्चरण करने लगा, परीषह सहने लगा। धन्य है ऐसे योगिराजों को!

चतुर्थ परिच्छेद

एक सुप्रतिष्ठक नामक शहर था। वह संसार में प्रसिद्ध था। वहाँ का राजा जयवर्मा था। उसकी रानी का नाम था जयमती। उनके दो पुत्र थे। उनके नाम अछेद्य और अभेद्य थे।

एक दिन पिहिताश्रव मुनि उक्त शहर में आये। राजा अपने पुत्रों को लेकर मुनिराज की पूजन के लिये गया। मुनिराज से उसने धर्मोपदेश सुनकर पूछा, भगवन्! क्या मेरे ये पुत्र किसी की सेवा करेंगे या अपना राज्य चलायेंगे, मुनिराज बोले, जिस महापुरुष ने पुण्ड्रवर्धन नगर से उसके मालिक सोमप्रभ को राज्यच्युत किया है-राज्य से अलग किया है वही इनका स्वामी होगा। अपने पुत्रों का भविष्य सुनकर जयवर्मा को बड़ा वैराग्य हुआ। उसने संसार की इस लीला को जो आज राजा है वही कल रंक हो जाता है और जो आज रंक है वह कल राजा होता है-देखकर उसी वक्त अपने बड़े पुत्र अछेद्य को राज्यभार सौंप दिया और आप वनवासी हो गया।

कुछ दिनों के बाद इसी शहर में सोमप्रभ मुनिराज कुछ साधुओं को साथ लिए आ निकले। ये दोनों भाई उनकी वन्दना करने को गये। उन्हें नमस्कार कर इन्होंने पूछा, स्वामी! आपका दीक्षा ग्रहण करने का कारण मैं सुनना चाहता हूँ। सोमप्रभ मुनिराज के दीक्षा लेने का कारण उनमें से एक मुनिराज ने इस प्रकार कहा—

"ये पुण्ड्रवर्धनपुर के रहने वाले हैं। इनका नाम सोमप्रभ है। जयंधर के पुत्र नागकुमार ने इन्हें राज्य से पृथक् कर दिया था। संसार की इस क्षणिक लीला से इन्हें बड़ा वैराग्य हुआ। ये उसी समय दीक्षित हो गये।"

सुनकर दोनों भाई पुण्ड्रवर्धनपुर पहुँचे। नागकुमार के दर्शन से वे बड़े खुश हुए। उन्होंने उसके पास रहने की उससे प्रार्थना की। नागकुमार ने उन्हें अपने पास रख लिया।

कुमार को वहाँ रहते कई दिन हो गये। वह वहाँ उकता गया। उसे अन्यत्र जाने की इच्छा हुई। वह जयवर्मा से आज्ञा लेकर वहाँ से चल दिया। रास्ते में उसे एक जालांतिक नाम का, वन पड़ा। वह शान्ति पाने की इच्छा से कुछ देर के लिये वहाँ ठहर गया। जब से वह चला था उसने कुछ खाया नहीं था। इसलिये वहाँ वह भूख से आतुर हो उठा। बगीचे में कुछ वृक्षों पर खूब फल लगे थे, पर वे थे विषफल। नागकुमार को यह बात मालूम न थी। इसलिये उसने अपने साथियों के साथ वे फल खा लिये। उसके पुण्य से उसे कुछ भी हानि न हुई।

इतने में दो योद्धा नागकुमार के पास आए। उनके नाम सहस्र और भट थे। उन्होंने नागकुमार को बड़े विनय से नमस्कार किया और वे बोले, हम बहुत समय से आपकी राह देख रहे हैं। आपके आज दर्शन हुए, इसकी हमें बड़ी खुशी है। नागकुमार ने कहा, किसलिए आप मेरी राह देख रहे थे ?

वे बोले, हमने एक दिन एक मुनिराज से पूछा था कि हमारा मालिक कौन होगा ? तब मुनिराज ने कहा था कि जो जालांतिक वन में आकर ठहरेगा और उसके वृक्षों के विषफल खायेगा वही तुम्हारा मालिक होगा। वह हाल हमने अपनी आँखों से आज देख पाया। आप हमें अपने दास होने की आज्ञा दीजिए। इतना कहकर वे पास ही के शहर में पहुँचे। वहाँ के राजा सिंहरथ को उन्होंने नागकुमार के आने की खबर की। वह वहाँ आया और नागकुमार को अपने महल लिवा ले गया।

नागकुमार सिंहरथ के अधिक आग्रह से कुछ दिनों के लिये वहीं ठहरा रहा।

एक दिन सिंहरथ राजसभा में बैठा हुआ था, इतने में एक मनुष्य ने आकर उसे एक पत्र दिया। उसमें लिखा था—

सिन्धुदेश का राजा चन्द्रप्रद्योतन मेरी पुत्री से अपना विवाह करने के लिये मुझे वाध्य कर रहा है। मैंने उसका विवाह नागकुमार के साथ करने का दृढ़ निश्चय कर लिया था, इसलिए मैंने इन्कार लिख भेजा था। इससे वह रुष्ट होकर मेरे ऊपर चढ़ आया है और कहता है कि, यदि तुम अपनी कुमारी का विवाह मुझसे न करोगे तो तुम्हारे राज्य का रहना भी कठिन होगा।

आप मेरे परम मित्र हैं। आपसे अपना हाल कहना मेरा कर्त्तव्य है। मैं आशा करता हूँ कि आप यहाँ आकर मुझे सहायता देंगे। मैं आपका बड़ा आभारी होऊँगा।

आपका दर्शनाभिलाषी-**हरिवर्मा।**

पत्र बाँचकर उसने नागकुमार से कहा, मेरे मित्र का पत्र आया है। उसका एक बड़ा जरुरी काम है। इसलिये मैं वहाँ जाता हूँ। आप तब तक यहीं ठहरें। मैं बहुत जल्दी लौटूँगा।

नागकुमार ने कहा, ऐसा क्या काम है जिसके लिये आप इतनी जल्दी करते हैं। यदि कोई खास बात न हो तो कहिए। सिंहरथ ने हरिवर्मा का पत्र नागकुमार को दे दिया। वह पढ़कर बोला, यह हरिवर्मा कौन है ?

सिंहरथ ने कहा, सौराष्ट्र देश में गिरिनगर नाम का-शहर है। उसी का वह राजा है। उसकी रानी का नाम मृगलोचनी है। उनकी पुत्री गुणवती बड़ी खूबसूरत और विदुषी है। उसी के लिये चन्दप्रद्योतन झगड़ा कर रहा है। बाकी हाल तुम पत्र में पढ़ चुके हो।

नागकुमार ने कहा, अच्छी बात है। मैं भी आपही के साथ चलता हूँ। देखूँ तो वह कैसा बली है ? दूसरे यह भी है कि आपके बिना मेरा यहाँ दिल भी नहीं लगेगा। वे दोनों वहाँ से रवाना होकर गिरिनगर जा पहुँचे।

चन्द्रप्रद्योतन को जब उनके आने का हाल मालूम हुआ और उन्हें युद्ध के लिये उसने तैयार देखे तब उसने भी अपने दो वीरों को जिनके नाम जय और विजय थे, युद्ध के लिये भेजे। वे लड़ने लगे। उधर नागकुमार ने अपने अछेद्य और अभेद्य वीरों को लड़ने की आज्ञा की। दोनों ओर के योद्धा

खूब जी झोंककर लड़े। पर आखिर में विजयलक्ष्मी ने वरमाला नागकुमार के वीरों के गले में डाली। उन्होंने चन्द्रप्रद्योतन के वीरों को बाँधकर नागकुमार के पास पहुँचा दिये।

चन्द्रप्रद्योतन को जब यह हाल मालूम पड़ा और शत्रु सेना में व्याल और अछेद्य अभेद्य यदि बड़े-बड़े शूरवीरों को लड़ने के लिये सन्नद्ध देखे तब वह स्वयं उनसे लड़ने के लियें युद्धभूमि में उतरा। उसने अपनी सेना में व्यूह-रचना की और उसे योग्य स्थान में नियुक्त कर वह लड़ने लगा।

चन्द्रप्रद्योतन ने सब कुछ किया तब भी उसे विजयलक्ष्मी, इस भय से कि संसार मुझे व्यभिचारिणी कहेगा, उसके पास न गई और जहाँ पहले गई थी वहीं बनी रही। नागकुमार के वीरों ने चन्द्रप्रद्योतन को बाँधकर उसे अपने मालिक के पास पहुँचा दिया। नागकुमार ने उसे हरिवर्मा के सुपुर्द कर दिया। उसने उसे अपने कैदखाने में डलवा दिया।

नागकुमार की आकस्मिक सहायता से हरिवर्मा बड़ा प्रसन्न हुआ। वह बोला, आपने इस समय जो मेरा आशातीत उपकार किया है उसका बदला चुकाना मेरे लिये असंभव है। पर फिर भी मैं अपनी कुमारी का आपके साथ विवाह करके आपकी यत्किंचित् सेवा करना चाहता हूँ। आप मेरी प्रार्थना स्वीकार कीजिए। इसके बाद उसने अच्छे दिन में अपनी राजकुमारी का विवाह कुमार के साथ बड़े ठाट-बाट से कर दिया।

नागकुमार कुछ दिनों तक वहाँ ठहरा। इसके बाद वह नेमिनाथ भगवान् की निर्वाण भूमि की यात्रा के लिये गिरनार गया। भक्तिभाव से उसने पर्वत की यात्राकर शान्ति प्राप्त की। उसे पर्वत का प्राकृतिक सौन्दर्य देखकर बड़ा आनन्द मिला।

इस समय कौशाम्बी का राजा शुभचन्द्र था। उसकी रानी का नाम था सुभावती। इसके सात पुत्रियाँ थीं। उनके नाम थे-स्वयं-प्रभा, सुप्रभा, कनकप्रभा, स्वर्णमाला, नन्दा, पद्मश्री और नागदत्ता।

एक रत्नसंचय नाम का शहर था। उसका राजा मेघवाहन विद्याधर था। मेघवाहन ने सुकण्ठ नाम के राजा को उसकी राजधानी से निकाल दिया

और उस पर अपना अधिकार कर लिया। सुकण्ठ ने कौशाम्बी के पास एक शहर बसाया। उसका नाम उसने अलंघ्यपुर रखा। वह वहीं आनन्द से रहने लगा।

एक दिन शुभचन्द्र की पुत्रियाँ कहीं जा रहीं थीं। सुकण्ठ ने उन्हें देख लिया। उनकी रूप मधुरिमा देखकर वह उनकी प्राप्ति के लिये आतुर हो उठा। उसने उनके लिये उनके पिता से प्रार्थना की। पर शुभचंद्र ने उसकी प्रार्थना पर कुछ ध्यान न दिया। शुभचंद्र की इस लापरवाही से उसे बड़ा क्रोध आया। क्रोध से वह अन्धा बन गया। उसने लाभालाभ का कुछ विचार न कर शुभचंद्र को मरवा डाला और सातों कन्याओं को पकड़ मंगवाया। उसने उनसे विवाह के लिये आग्रह किया। सातों ने मिलकर बड़ी निर्भीकता से उसे कह दिया, पापी ! तूने हमारे पिता को तो मरवा ही डाला है। अब तू हमारा कुछ भी कर। हम तेरे साथ कभी विवाह न करेंगीं। हम आज दृढ़ संकल्प करती हैं कि, हम उसी वीर युवा को अपनायेंगी, अपने पवित्र हृदय में उसे जगह देंगीं, जो तुझे मारकर हमारे पिता का बदला लेगा। नहीं तो आजन्म ब्रह्मचारिणी रहकर ही जीवन बितायेंगीं। पर तुझ जैसे चाण्डाल का तो कभी स्पर्श भी न करेंगी। स्पर्श तों दूर रहे, कभी तेरा मुख भी न देखेंगीं। सुकण्ठ को इनके कठोर वचनों से गुस्सा तो बहुत आया, पर वह उसे सहन कर गया। उसने विचारा कि, स्त्रीजाति का गुस्सा तात्कालिक ही बहुत होता हैं पर फिर वे धीरे-धीरे, जब कि उनके लिये कुछ गति नहीं होती हैं, तब झखमार कर सब कुछ करने लगती हैं। ये तो अभी लड़कियाँ हैं। कहाँ तक इतनी दृढ़ रह सकेंगी ?

आज नहीं कल, कल नहीं परसों, अगत्या एक न एक दिन मेरे ही तो पावों पर वे गिरेंगीं और मुझसे जीवन की भिक्षा मांगेंगीं। तब अभी क्यों उनसे जबरदस्ती करूँ ? अभी तो इनको कैद में डलवा देना ही अच्छा है, जिससे इन्हें अपने कर्त्तव्य का ज्ञान हो और ये अपनी गल्ती पर पश्चाताप करें। ऐसा समझकर सुकण्ठ ने इन्हें जेलखाने में डलवा दिया।

वे वहीं रहने लगीं। उन्हें रहते कुछ दिन बीत गये। जब दैवकी मनुष्य पर कृपा होती है तब उन्हें कठिन से कठिन दुःख से भी छुट्टी मिल जाती है। इनके लिये भी ऐसा ही हुआ। एक दिन की बात है कि इनकी सबसे छोटी बहन नागदत्ता संयोगवश जेलखाने से निकल भागी। वह वहाँ से जाकर एक आर्यिकाश्रम में पहुँची। वह वहाँ कुछ दिन ठहरी। हस्तिनापुर का राजा अभिचन्द्र शुभचन्द्र का भाई था। नागदत्ता ने उसके पास पहुँचकर अपने पिता के मारे जाने का और अपनी बहनों को कैदखाने में डाल देने का सब हाल उससे कह सुनाया। अभिचन्द्र को सुकण्ठ के इस अन्याय पर बड़ा गुस्सा आया। उसने उसी वक्त पत्र लिखकर नागकुमार को गिरनार से बुलाया और उससे सब घटना कह सुनाई। नागकुमार इस विषय की सलाह लेने को अपने मामा के पास गया।

इसके बाद नागकुमार और अभिचन्द्र शुभचन्द्र की राजधानी में गये। वहाँ से उन्होंने सुकण्ठ के पास दूत भेजा। उसने नागकुमार के कहे अनुसार सब हाल सुकण्ठ से कहा। उसे सुनकर सुकण्ठ क्रोध में आकर बोला, मैं उन कन्याओं को हर्गिज नहीं छोड़ सकता। जान पड़ता है तेरे मालिक को काल-सर्प ने डसा है। इसलिए वह मुझ पर शासन करना चाहता है। जाओ ! जाओ ! उससे कह दो कि, यदि हिम्मत हो तो युद्धभूमि में उतरे और फिर कन्याओं के लेने का साहस करे।

दूत के द्वारा उसे युद्ध के लिये तैयार सुनकर नागकुमार भी युद्धभूमि में जा पहुँचा। उसने अपनी सब विद्याओं को भी बुलाया।

दोनों ओर से भयंकर युद्ध का सूत्रपात हुआ। दोनों ओर के योद्धा भी प्राणों की परवाह न करते हुए लड़ने लगे। आखिर कुमार ने अपने चन्द्रहास खड्ग द्वारा सुकण्ठ का सिर काट दिया।

सुकण्ठ का एक पुत्र था। उसका नाम वज्रकंठ था। वज्रकंठ नागकुमार की शरण में गया और उसे बड़े उत्साह के साथ अपने शहर में लाया। इसके बाद अपनी छोटी बहिन रुक्मणी का विवाह उसने नागकुमार से कर दिया। इसके अतिरिक्त नागकुमार ने शुभचन्द्र की सातों कन्याओं को

और अभिचन्द्र की चन्द्रप्रभा नाम की राजकुमारी के साथ विवाह किया। वह अब कुछ दिनों के लिये हस्तिनापुर में ठहर गया। वहाँ अपनी प्रियाओं के साथ वह आनन्द से रहने लगा।

पाण्डुदेश के अन्तर्गत एक मधुरापुरी थी। उसका राजा मेघवाहन था। उसकी रानी का नाम था जयलक्ष्मी। उनके श्रीमती नाम की पुत्री थी। उसने प्रतिज्ञा की थी कि, जो मेरे नृत्य करते वक्त मधुर मृदंगध्वनि के द्वारा मेरा मन मुग्ध कर सकेगा वही मेरा स्वामी हो सकेगा।

जयलक्ष्मी धाय के भी एक लड़की थी। उसका नाम काम लता था। वह अपना विवाह करना नहीं चाहती थी। यह सुनकर महाव्याल वहाँ आया।

एक दिन मेघवाहन के भान्जे ने आकर कामलता के लिये अपने मामा से प्रार्थना की। मेघवाहन ने उसे दे भी दी। वह उसे विवाह के लिये अपने शहर लिये जाता था। पर कामलता उसे पसन्द नहीं करती थी। रास्ते में उसे महाव्याल दीख पड़ा। उसे देखते ही वह चिल्लाई और बोली, मेरी रक्षा कीजिए। मुझे बचाइए। महाव्याल ने कामांक से कहा, इस बेचारी के साथ क्यों जबरदस्ती की जा रही है ? इसे छोड़ते क्यों नहीं ?

कामांक बोला—मैं इसे छोड़ सकता हूँ; पर इस शर्त पर कि यदि तुम इससे विवाह न करो। इसके सिवा मैं इसे नहीं छोड़ सकता।

महाव्याल ने कहा—हाँ यह हो सकता है कि मैं स्वयं अपनी इच्छा से इसके साथ विवाह न करूँ। पर इसकी इच्छा का मैं बाधक नहीं हो सकता। अर्थात् इसकी इच्छा मेरे साथ विवाह करने की होने पर मैं इन्कार नहीं कर सकूँगा।

कामांक ने कहा—नहीं, तुम्हें यह भी शर्त करनी पड़ेगी कि इसकी इच्छा होने पर भी तुम इसके साथ विवाह न करोगे।

महाव्याल बोला—इसके लिये मैं तुम्हारा बाध्य नहीं।

कामांक ने कहा—तब मैं भी इसे न छोड़ूंगा।

महाव्याल बोला—तुम्हें छोड़ना होगा।

महाव्याल ने जब देखा कि इतने समझाने पर भी यह रास्ते पर नहीं आता तब इसका इसे कुछ फल भी दिखाना चाहिए। यह विचार कर वह बोला, या तो तुम्हें इसे छोड़ देना चाहिए, नहीं तो मुझे जबरन तुम पर आक्रमण करके इसकी रक्षा करनी होगी। मैं अपनी आँखों से यह बलात्कार नहीं देख सकता। जब तुम्हें वह चाहती ही नहीं तब तुम्हारी उस पर इतनी ज्यादती क्यों ?

कामांक ने कहा—मैं तुम्हारी ऐसी थोथी धमकियों से डरने वाला नहीं। तुममें हिम्मत हो तो छुड़ा लो, नहीं तो चलते बनो।

महाव्याल को आखिर अगत्या कामांक के विरुद्ध शस्त्र उठाना पड़ा। कामांक ने भी म्यान से तलवार खींची। दोनों की मुठभेड़ हो गई। दोनों ने अपनी कुशलता शस्त्र चलाने में खूब बतलाई। आखिर महाव्याल ने उसका शिर धड़ से जुदा कर दिया।

मेघवाहन को जब यह खबर मिली तब वह उसी वक्त वहाँ आकर महाव्याल को अपने महल लिवा ले गया और कामलता का विवाह उसके साथ कर दिया। महाव्याल सुखपूर्वक वहीं रहने लगा।

मधुरापुरी से महाव्याल उज्जयिनी आया। उस समय उसका राजा जयसेन था और उसकी रानी थी जयश्री। मेनका नाम की उनके एक पुत्री थी। महाव्याल ने मधुरा में सुना था, कि मेनका किसी को पसन्द नहीं करती। चाहे वह फिर कितना ही खूबसूरत क्यों न हो। महाव्याल उसकी प्रतिज्ञा सुनकर यहाँ आया है। जब महाव्याल बाजार में एक सुन्दर जगह बैठा था और उसके सौन्दर्य को देखने के लिये हजारों पुरुष एकत्रित हो रहे थे, उसी समय मेनका भी उधर आ निकली। उसने लोगों की भीड़ देखकर पूछा कि ये लोग क्यों एकत्रित हो रहे हैं ? उसकी एक सहचरी ने कहा, कुमारी ! एक बड़ा खूबसूरत युवा, जो काम से सुन्दरता में कम नहीं है, यहाँ बैठा हुआ है। उसी के देखने के लिये ये सब लोग एकत्रित हो रहे हैं।

कुमारी ने कहा, मैं भी देखूँ वह कैसा है ? कुमारी ने उसे देखा और एक व्यंग भरी हँसी हँसकर वह चल दी।

उसके इस तरह चले जाने से महाव्याल को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसे उसी वक्त मुनिराज के वचन याद हो आये। वह वहाँ से अपने बड़े भाई के पास हस्तिनापुर गया और अपने आने का कारण उसने उससे कह दिया। वह यह भी बोला कि, जान पड़ता है तुम्हारा और मेरा स्वामी एक ही होगा। मुझे पूर्ण आशा है, मेनका नागकुमार को अवश्य पसन्द करेंगी। कुमार का चित्रपट उसे दिखाना चाहिए। व्याल ने उसकी सलाह पसन्द की। भाई की सम्मति से महाव्याल कुमार का चित्रपट उज्जयिनी की राजकुमारी के पास ले गया और वह उसे उसने दिखा दिया। कुमारी नागकुमार की रूप सुधा का परोक्ष पानकर भी बहुत सन्तुष्ट हुई। उसने अपना हृदय एकदम कुमार को दे डाला।

महाव्याल बड़े भाई को साथ लेकर नागकुमार के पास आया। नागकुमार ने व्याल से पूछा यह कौन है ? व्याल ने कहा, देव ! ये मेरे छोटे भाई हैं। आपही की सेवा के लिये यहाँ आये हैं। आप इन्हें अपनाइए। सुनकर कुमार को बड़ा हर्ष हुआ।

इसके बाद महाव्याल ने मेनका के सम्बन्ध की बात का प्रसंग छेड़ा। कुमार महाव्याल को साथ लेकर उज्जयिनी पहुँचा। जयसेन ने उसका बड़ा सत्कार किया और उसके साथ अपनी कुमारी को विवाह दिया।

इसके बाद वह मधुरा आया और श्रीमती को अपने मृदंग बजाने के कौशल से मुग्धकर उसने उससे भी विवाह कर लिया।

एक दिन एक साहुकार आया। उससे नागकुमार ने पूछा कि, आपने तो बड़े-बड़े दूर की सफर की है। कहिए तो, कुछ आश्चर्य की बात आपके देखने में आई ?

वह बोला, कुमार! मैंने देखी तो अवश्य है, पर उसका रहस्य मैं नहीं जान पाया। वह बात यह है कि, समुद्र के बीच के स्थल भाग में एक

बड़ा रमणीय भूमितिलक नाम का नगर है। वहाँ एक जिन मन्दिर है। जब प्रतिदिन दो पहर का वक्त आता है तब वहाँ बहुत सी बड़ी खूबसूरत लड़कियाँ रोया करती हैं। मैं नहीं कह सकता कि उनके रोने का कारण क्या है ?

कुमार ने उसकी आश्चर्य कारक बात सुनकर अपनी विद्याओं को स्मरण किया। विद्याएँ आईं और कुमार को उन्होंने उसके कहे अनुसार स्थान पर पहुँचा दिया। कुमार पहले व्यालादि के साथ जिनमन्दिर गया। वह जब भगवान् के दर्शन कर बाहर निकला तब उसे ये सुनाई पड़ा।

"देवताओं, गन्धर्वों, यक्षों, राक्षसो, दानवों ! तुम हमारी प्रार्थना सुनो। पापी वायुवेग ने हमें कैद कर रक्खी हैं और वह हमसे बलात् शादी करना चाहता है। तुम हमारी रक्षा करो ! हम बड़ी दु:खदशा में सड़ रही हैं।

सुनकर नागकुमार उनके पास पहुँचा। उसने उनसे पूछा, पूरा हाल अपना सुनाओ। तुम किसी तरह की चिंता न करो। मेरे रहते तुम्हें कोई परेशान नहीं कर सकता।

उनमें से धरणिसुन्दरी ने कहा, हमारा पिता पृथ्वीतिलक शहर का राजा है। एक दिन हमारे मामा के लड़के वायुवेग ने पिताजी से कहा कि, आप अपनी कुमारियों का विवाह मुझसे कर दीजिए। पिताजी उसके कुरूप को देखकर हँस पड़े। उन्होंने कहा, तुम पहले अपने रूप का संस्कार करके आओ फिर देखा जायेगा। वह इतना कुरूप है कि उसे साधारण स्त्री भी नहीं चाहेगी। और न उसमें कोई ऐसे गुण ही हैं जिन्हें देखकर पिताजी उसके साथ हमारा विवाह करते।

पिताजी के कहने का उसके चित्त पर बुरा असर पड़ा। वह युद्ध करता, पर युद्ध के लायक उसके पास कुछ साधन न था। अगत्या पिताजी से बदला लेने के लिये उसने राक्षसी विद्याएँ सिद्ध कीं और उनके बल से उसने पिताजी को मरवा डाला। इसके बाद उसने जबरन हमसे विवाह करना चाहा। हमने उससे कह दिया कि तू चाहे हमारी जान भी क्यों न लेले, पर हम उसी के साथ अपना विवाह करेंगी कि जो तेरा शिर काटकर हमारे पिता का बदला ले सकेगा।

वह बोला, खैर, देखूँ संसार में मुझसा कौन बली है ? इसलिये छह महीने की मैं तुम्हें मोहलत देता हूँ। तुम तब तक मुझ जैसा बली योद्धा लाकर मुझसे लड़ाओ। यदि वह मुझे जीत लेगा तब तो मैं तुम्हें छोड़ ही दूँगा। अन्यथा जबरन मुझसे ब्याह करना होगा। यह कहकर उसने हमें कैदखाने में डाल रक्खी हैं। हमारे रक्ष और महारक्ष नाम के दो भाई हैं। वे भी उसने कैद कर लिए हैं।

नागकुमार ने उनका वृत्तान्त सुना। उसे वायुवेग पर बड़ा क्रोध आया। पहले उसने उन बालिकाओं को छुड़ाकर उनकी रक्षा का भार अपने किसी आत्मीय को सौंपा। इसके बाद वह युद्ध के लिये तैयार हुआ। उसने वायुवेग को भी कहला भेजा कि मैंने तेरे पहरेदारों को मारकर मेघवाहन की सब लड़कियों को छुड़ा लिया है। तुझमें हिम्मत हो तो तू उन्हें मुझसे छीन कर ले जा।

वायुवेग नागकुमार की इस गुश्ताखी (चेष्टा) पर बड़ा बिगड़ा। उसने फौरन ही युद्ध का बाजा बजाया और स्वयं बड़े दलबल के साथ नागकुमार पर चढ़ आया। नागकुमार भी सजग था।

दोनों में घनघोर युद्ध आरम्भ हुआ। शस्त्रों की टक्कर से निरभ्र बादल में भी बिजलियाँ इधर-उधर दौड़ने लगीं। पृथ्वी, हाथी और घोड़ों की भयंकर गर्जना और हिनहिनाहट से काँप उठी। युद्धभूमि ने विकराल रूप धारण किया। वीर पुरुष देवकन्या के सौन्दर्य-सुधा की लालसा से महत्वाकांक्षा से जी तोड़कर लड़ने लगे। कई घण्टे युद्ध हुआ, पर जयश्री ने तब तक किसी का भी हाथ न पकड़ा। यह देख वायुवेग ने गुस्से में आकर अपनी विद्या के जोर से जल बरसाना शुरू किया। नागकुमार ने उसे प्रचंड वायुवेग से हटाया। वायुवेग ने फिर अन्धकार कर दिया। नागकुमार ने चारों ओर प्रकाश फैला दिया। नागकुमार जितना-जितना उसके चलाए प्रयोगों को व्यर्थ करता जाता था उतना ही वह खीज-खीज कर भयंकर प्रयोगों को काम में लाता था। अब की उसने एक साथ जलप्रवाह छोड़ा। नागकुमार को उसके नष्ट करने को वडवानल का प्रयोग करना पड़ा।

जब वायुवेग विद्याओं के प्रयोग द्वारा नागकुमार पर विजय न पा सका तब उसे शस्त्र हाथ में उठाना पड़ा। वह खड्ग निकालकर नागकुमार का सिर काट लेने को झपटा। नागकुमार इतने समय तक तो केवल यह देखने के लिये कि देखें वायुवेग में कितनी हिम्मत है, लड़ रहा था। पर जब वायुवेग उस पर झपटा तब उससे न रहा गया। उसने म्यान से तलवार निकालकर उसका सिर काट लिया। वायुवेग धड़ाम से पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसकी सेना में हाहाकार मच गया। उसे जिधर से रास्ता मिला वह उधर से भाग निकली। जयश्री ने नागकुमार को अपनाया।

इसके बाद वे सब बालिकाएँ कुमार से विवाह दी गईं। कुमार वायुवेग के राज्य को रक्ष और महारक्ष को सौंपकर वहाँ से चल दिया। रास्ते में उसे और भी बहुत योद्धा मिले। उन्होंने कुमार की दासवृत्ति स्वीकार की। कुमार ने उनसे उसका कारण पूछा। उन्होंने कहा, हमें एक मुनिराज ने यह कहा था कि, जो मेघवाहन की कन्याओं को विवाहेगा वही तुम्हारा स्वामी होगा। इसलिये हम आपकी सेवा में आये हैं।

कुमार वहाँ से कांचीपुर पहुँचा। वहाँ के राजा पल्लव ने उसकी अच्छी पाहुनगति की। कुमार कुछ दिन वहाँ ठहरकर आगे बढ़ा। रास्ते में उसे दंतिपुर मिला। उस समय उसका राजा चन्द्रगुप्त था। उसकी रानी का नाम चन्द्रमती था। उनके एक कन्या थी। उसका नाम मदनमंजूषा था। चन्द्रगुप्त ने नागकुमार को एक तेजस्वी और बुद्धिमान् राजकुमार देखकर उसके साथ अपनी प्रिय पुत्री का विवाह कर दिया।

इसके बाद कुमारी की खूब प्रसिद्धि सुनकर त्रिलोकतिलक शहर के राजा विजयंधर ने भी अपनी कुमारी श्रीमती का ब्याह बड़े उत्सव के साथ नागकुमार से कर दिया।

नागकुमार श्रीमती से विवाह कर कुछ दिन वहीं ठहरा रहा। वहीं वह आनन्द से अपने सुख के दिन बिताने लगा। इसी बीच में वहाँ पिहिताश्रव मुनि आये। नागकुमार उनकी वन्दना के लिये गया। उन्हें नमस्कार कर उसने उनसे श्रावकधर्म का स्वरूप पूछा। मुनिराज ने उसे उपदेश दिया।

पाँचवा परिच्छेद

जैसे जड़ें वृक्ष की मजबूती का कारण होती हैं और मकान की नींव उसके दृढ़ता का कारण होती है उसी तरह सम्यक्त्व सब व्रतों की दृढ़ता का कारण है।

सम्यक्त्व—देव, गुरु, शास्त्र और तत्वों के श्रद्धान करने को कहते हैं।

देव—वह होना चाहिए जिसमें क्षुधा, तृषा, जरा, रोग, जन्म, भय, अभिमान, राग, द्वेष, चिन्ता, रति, अरति, शोक आदि दोष न हों, जो वीतरागी हो, सर्वज्ञ हो और हित का उपदेश करने वाला हो।

गुरु—वह कहलाता है जो विषयों की आशा से मुक्त हो, निरांरभी हो, जिसके पास किसी प्रकार का परिग्रह-धन, सम्पत्ति, चाँदी, सोना, घर, बाग, बगीचा न हो, और जो निरन्तर ज्ञानाभ्यास, तपश्चर्या में मग्न रहता हो।

शास्त्र—वह सच्चा है, जिसमें जीवों की रक्षा का उपदेश दिया गया हो, जिसके प्रकरणों में कहीं परस्पर विरोध न आता हो, और विरागी महात्माओं द्वारा दूसरे के हित की कामना से जिसका निर्माण हुआ हो।

तत्व सात हैं—

जीव—जो चेतनामय हो।

अजीव—जिसमें चेतना न हो।

आस्त्रव—कर्मों के आने का जो रास्ता हो।

बन्ध—आत्मा और कर्मों के प्रदेशों का परस्पर में एक क्षेत्रावगाह होना।

संवर—कर्मों के आने के रास्ते का बंद होना।

निर्जरा—कर्मों का एकदेश क्षय होना।

मोक्ष—सब कर्मों का नष्ट हो जाना।

सम्यक्त्व के दश भेद हैं—

आज्ञासम्यक्त्व—वीतराग भगवान के वचनों पर श्रद्धान करना।

मार्गसम्यक्त्व—मोक्षमार्ग का बाह्याभ्यन्तर परिग्रहरहित श्रद्धान करना।

उपदेशसम्यक्त्व—त्रेसठ शलाका के पुरुषों का पवित्र चरित्र सुनकर श्रद्धान करना।

सूत्रसम्यक्त्व—मुनियों की आचरण विधि सुनकर श्रद्धान् करना।

बीजसम्यक्त्व—बीजगणित आदि करणानुयोग के ग्रन्थ सुनकर श्रद्धान करना।

संक्षेपसम्यक्त्व—पदार्थों के संक्षिप्त स्वरूप को जानकर श्रद्धान करना।

विस्तारसम्यक्त्व—द्वादशांग शास्त्र को सुनकर श्रद्धान करना।

अवगाढ़सम्यक्त्व—अंग और अंगबाह्य शास्त्र को जानकर श्रद्धान करना।

परमावगाढ़सम्यक्त्व—केवलज्ञान के द्वारा पदार्थों को जानकर श्रद्धान् करना। यह सम्यक्त्व केवली भगवान के होता है।

श्रावकों के आठ मूल गुण—

मद्य—एक अपवित्र वस्तु है। उसके पीने से ज्ञान नष्ट होता है। शराबी पुरुष जब नशे में मत्त होता है तब उसे लोकलाज, धर्म, कर्म आदि का कुछ भान नहीं रहता। वह उस समय बुरा से बुरा काम करने पर उतर आता है। उसे यह भी भान नहीं रहता कि कौन तो मेरी माता है ? कौन बहन है ? कौन स्त्री है ? कौन लड़की है ? वह सबको एकसा देखकर उनके साथ अपनी बुरी वासनाओं के सफल करने के लिये छटपटाता है। शराबी जब शराब पीकर चलता है तब उसकी बड़ी बुरी हालत हो जाती है। उसके पाँव कहीं के कहीं गिरते हैं। वह अपने को बिल्कुल भूल जाता है। नशे में उसे कुछ सुध नहीं रहती। वह चक्कर खाकर गिर भी पड़ता है। लोग उसकी

दिल्लगी उड़ाते हैं। कुत्ते उसके मुँह में पेशाव करते हैं। मतलब यह है कि शराबी की सब तरह की दुर्दशा होती है। इसलिये जो बुद्धिमान् हैं उन्हें न केवल शराब—मद्य ही का किन्तु नशा मात्र का परित्याग करना चाहिए।

माँस—बड़ा घृणित पदार्थ है। उसके तो देखने मात्र से घृणा-नफरत पैदा होती है, उलटी होने लगती हैं। न जाने लोग उसे कैसे खा लेते हैं ? उनका हृदय बड़ा निर्दयी और कठोर है। माँस जीवों की हिंसा से पैदा होता है और जीवमय होता है। निर्दयी मनुष्य निरपराध पशुओं को मारते हैं और उन्हें पकाकर खाते हैं। बड़ा अचंभा होता है कि जब उन्हें किसी तरह की तकलीफ होती है अथवा उनके हाथ-पावों में काँटा या चाकू लग जाता है तब तो वे बड़े दुःखी होते हैं, तड़फने लगते हैं। फिर न जाने, क्यों उन्हें बुद्धि नहीं होती कि दूसरे जीवों के गले पर छुरी फेरने से उन्हें भी बेहद कष्ट होता होगा ? पर वे अपनी नीच लालसा को घृणित जीभ के स्वाद को अच्छा समझकर ऐसे राक्षसी कामों का करना बुरा नहीं समझते। अपने बच्चे कुछ देर के लिये कहीं खो जावें तब तो वे आतुर हो उठते हैं। उनके घरों में रोना-धोना मच जाता है। हा-हाकार के मारे वे जमीन आसमान को एक कर डालते हैं। और जब बेचारे निरपराध दीन पशुओं को बिलबिलाते छोड़कर उनके बाल-बच्चों को वे सदा के लिये उनसे बिछुड़ा देते हैं—निर्दयी होकर अपनी तीक्ष्ण तलवार या छुरी से उनके गले काट डालते हैं, तब उन्हें कुछ दुःख नहीं होता। कैसा राक्षसी काम! वे मलमूत्र आदि वस्तुओं से तो घृणा करते हैं। पर न जानें फिर क्यों वे जहाँ पैदा होते हैं—जो मल-मूत्रमय ही है, उसे वे खा लेते हैं।

बहुत से माँस खाने वाले यह कहा करते हैं, "**जीवो जीवस्य जीवनम्।**" अर्थात् जीव जीव का जीवन है-रक्षक है। पर यह उनकी गलती है। जीव का प्राकृतिक जीवन आहार फलादिक हैं, जिनके खाने से किसी प्रकार की क्रूरता न आकर प्राकृतिक शान्ति बनी रहती है। माँस खाने वाले क्रूर और निर्दयी होते हैं, इसलिए उनमें स्वाभाविक शान्ति नहीं होती।

जीभ के लोलुपी लोग माँस को चाहे कैसा ही बतावें, पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि संसार में उससे बुरी और घृणित वस्तु कोई नहीं है।

जिनके हृदय में दया होती है, जो दुःख-कष्ट को अपने और दूसरों को तकलीफ का समान हेतु समझते हैं वे तो कभी हर्गिज (भूलकर भी) माँस नहीं खायेंगे। जिनकी मनुष्यदशा में भी राक्षसी प्रकृति है। उनके लिये तो कहना ही क्या ? जब उनमें मनुष्यत्व ही नहीं तब उन्हें कहा ही क्या जाये ? किन्तु बुद्धिमानों को माँस खाना उचित नहीं है।

मधु—शहद भी अपवित्र है। उसमें सूक्ष्मातिसूक्ष्म अनन्त जन्तु होते हैं। उनकी रक्षा नहीं हो सकती। इसलिये उसके खाने वाले को पाप बन्ध होता है। उसकी उत्पत्ति जीवों की बिना हिंसा के नहीं हो पाती और वह है भी केवल जीवों का उच्छिष्ट। इसलिये दयालु पुरुषों को शहद खाना उचित नहीं।

अहिंसाणुव्रत—जीवों की हिंसा के छोड़ने को कहते हैं। जैन धर्म की आधार शिला इसी अहिंसाव्रत पर निर्भर है। इसी की वृद्धि, रक्षा के लिये और झूठ, चोरी आदि पापों के छोड़ने का उपदेश दिया गया है। जैनधर्म कहता है, चाहे छोटा जीव हो चाहे बड़ा, पर उसकी जान बूझकर वा कषायों से कभी हिंसा न करो। तुम्हें कोई धन देता हो, या राज्य भी मिलता हो तब भी उसे पांव की ठोकर से लुढ़का दो, पर दूसरों को कभी तकलीफ न दो।

सत्याणुव्रत—झूठ के छोड़ने को कहते हैं। अर्थात् इस व्रत के पालन करने वाले को सदा सत्य बोलना चाहिए। ऐसा सत्य बोलना भी उचित नहीं है, जिससे निष्कारण दूसरे के प्राण जाते हों या उसे कष्ट होता हो।

अचौर्याणुव्रत—कहीं रक्खी हुई, रास्ते में पड़ी हुई, भूली हुई दूसरे की वस्तु को न लेने को कहते हैं। ऐसी वस्तुएँ न तो स्वयं ही लेनी चाहिए और न उठाकर दूसरे को देनी चाहिए।

ब्रह्मचर्याणुव्रत—परस्त्रियों को छोड़ने और स्वस्त्री में सन्तोष धारण करने को कहते हैं। ब्रह्मचर्य मनुष्य-जीवन का भूषण है। जिसमें ब्रह्मचर्य नहीं वह मनुष्य मनुष्यत्व से रहित है। जब तक पूर्ण ब्रह्मचर्य के पालन की शक्ति न हो तब तक पर स्त्रियों से, उनके एकान्त सहवास से और

एकान्त में उनके साथ संभाषाणादि करने से बचकर **स्वदारसन्तोष** व्रत पालना चाहिए। गृहस्थों के लिये यही ब्रह्मचर्यव्रत हैं। वे जब इसे साध लेंगे-इसमें अटल हो जायेंगे तब उन्हें ऊपर चढ़ने में भी कठिनाई न पड़ेगी। इसलिए सदा अपने अभ्यास को बढ़ाने के लिये और पाप से बचने के लिये ब्रह्मचर्याणुव्रत का पालन करना आवश्यक है।

परिग्रहपरिमाणाणुव्रत—धन, धान्य, सुवर्ण, चाँदी, दास, दासी आदि दश प्रकार के परिग्रह के परिमाण-इयत्ता करने को कहते हैं। जितनी तृष्णा अधिक बढ़ती है, उतना ही अधिक अनर्थ भी होता है। इसलिये तृष्णा को घटाने और सन्तोष को बढ़ाने के लिये परिग्रहपरिमाणाणव्रत धारण करना आवश्यक है।

शील सात हैं—

दिग्व्रत—दिशा की मर्यादा के भीतर इतने योजन तक व अमुक पर्वत, अमुक समुद्र वा नदी तक जाने की मर्यादा करने को कहते हैं।

अनर्थदण्डविरतिव्रत—पाप का उपदेश देना; हिंसा के उपकरण छुरी चाकू आदि का दान देना, दूसरों को बुरा बिचारना, हिंसा के पुष्ट करने वाले या राग के बढ़ाने वाले शास्त्रों का सुनना और बिना प्रयोजन भूमि का खोदना, जल ढोलना, वनस्पति तोड़ना, ये सब अनर्थदण्ड कहलाते हैं। इन्हें छोड़ना चाहिए। यही अनर्थदण्ड विरति व्रत कहलाता है।

भोगोपभोगपरिमाणव्रत—भोग वह है जो एक ही वक्त उपयोग में आये जैसे भोजन आदि। उपभोग वह है जो बार-बार उपयोग में आये। जैसे भूषण, वस्त्र आदि। ऐसे पदार्थों के सेवन का नियम-महीना, दो महीना, छह महीना, वर्ष आदि की मर्यादा को लिये, या यम-जीवनभर की मर्यादा को लिये परिमाण करने को भोगोपभोगपरिमाणव्रत कहते हैं।

ये तीन गुणव्रत कहलाते हैं।

देशावकाशिकशिक्षाव्रत—काल की मर्यादा के लिये पाँच अणुव्रत के प्रतिदिन संकोच करने को कहते हैं। अर्थात् पहले ग्रहण किये हुए अणुव्रतों

में काल की अवधि को लेकर प्रतिदिन कमी करने को देशावकाशिक शिक्षाव्रत कहते हैं।

सामायिकशिक्षाव्रत—किसी नियत समय पर्यंत पांचों पापों के सम्पूर्णपने से छोड़ने को कहते हैं। सामायिक करते वक्त एकान्त स्थान जैसे-वन, जिनालय अथवा और कोई निरुपद्रव स्थान होना चाहिए। सामायिक करने वाले को उचित है कि वह शरीर, मन, वचन की चेष्टा को सब ओर से रोककर बड़ी निश्चलता से सामायिक करे। सामायिक का मतलब ही यह है कि परिणामों में समता पैदा हो। उस समय किसी प्रकार का उपद्रव भी यदि आये तो भी चल चित्त न होकर उसे बड़ी धीरता से सह लेना चाहिए।

प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत—अष्टमी चतुर्दशी आदि पर्व तिथियों में इच्छापूर्वक चार प्रकार के आहार का त्याग करने को कहते हैं। उपवास के दिन पाँच पाप, आरंभ, स्नानादि न करना चाहिए। और पूरा दिन बड़ी शान्ति से धर्म श्रवणादि में बिताना चाहिए।

वैय्यावृत्तिशिक्षाव्रत—सत्पात्रों के लिये दान देने को कहते हैं। पात्रों का विवेचन पहले किया जा चुका है। पात्रदान में विशेष यह बात होनी चाहिए कि वह दान निरपेक्ष भाव से दिया जाये। इसके अतिरिक्त संयमियों की सेवा करना, उनकी तकलीफें दूर करना, अर्थात् उनका अपने से जितना उपकार किया जा सके उतना करना, यह सब वैयावृत्ति नामक शिक्षाव्रत है।

इनके अतिरिक्त कुछ और भी बातें गृहस्थों के लिये आवश्यक हैं—

पाँच उदम्बर फल-बड़, पीपलफल, ऊमर, कठूमर (अंजीर), पाकरफल और अचार-अथाना; पुष्पशाक, बेल (बिल्व-बील) और मक्खन आदि वस्तुएँ छोड़ने योग्य हैं। वे फूल आदि भी नहीं खाने चाहिए, जिनसे हिंसा बहुत होती हो और जो अनुपसेव्य (न खाने योग्य) हों।

पानी छानकर पीना चाहिए। पानी छानने का छन्ना (नातना) छत्तीस अंगुल लंबा और चौबीस अंगुल चौड़ा होना चाहिए। पानी दोहरे छन्ने से छानना चाहिए।

माँस, खून, गीला चमड़ा, हड्डी, पीप और मरे हुए शरीर को देखकर भोजन छोड़ देना चाहिए। फिर भोजन करना उचित नहीं है।

भोजन सदा मौनसहित करना चाहिए। मौन रखने से ज्ञान का विनय होता है। और अपने स्वाभिमान की रक्षा भी होती है।

रात में भोजन नहीं करना चाहिए। क्योंकि रात में भोजन करने वालों के अहिंसाणुव्रत का पालन नहीं हो सकता। इससे अधिक और क्या कहा जा सकता है ?

माँस, मद्य और मधु के खाने वाले नरकों में जाते हैं। क्योंकि वे जीवों की हिंसा द्वारा बहुत तीव्र पाप बन्ध करते हैं। वहाँ पलक उठाने मात्र भी उन्हें सुख नहीं मिलता। नारकियों की उत्कृष्ट आयु तेतीस सागर की होती है। जिस नरक में जितनी आयु होती है उतनी उसमें भोगनी पड़ती है। बीच में उनकी मृत्यु नहीं होती। नरक की आयु पूर्ण कर वह जब मनुष्य भव आदि में आता है तब भी वह रोगी, दरिद्री, कुबड़ा, लँगड़ा-लूला, जन्मान्ध, कोढ़ी, वामन, कुरुप आदि ही होता है। और जो माँस, मद्य आदि नहीं खाते हैं वे स्वर्ग में जाते हैं। वहाँ वे देवकन्याओं के साथ खूब सुख भोगते हैं। वहाँ से अपनी आयु पूर्ण कर मनुष्य पर्याय में अच्छे कुल में उत्पन्न होते हैं। वे अच्छे तेजस्वी होते हैं, खूब धनी होते हैं, और पुण्यवान होते हैं।

श्रावकों की ग्यारह श्रेणियाँ-प्रतिमा होती हैं। वे इसलिये कि उनके धारक क्रम-क्रम से अपनी उन्नति करते चले जायें और धीरे-धीरे संसार से विरक्त-उदासीन होकर आत्मकल्याण के लिये सच्चा मार्ग-मुनिपद अंगीकार कर सकें।

दर्शनप्रतिमा—शुद्ध-निर्दोष सम्यग्दर्शन पालन करने को संसार, शरीर, भोग-विलासादि से विरक्त होने को; सप्त व्यसन, पाँच उदुम्बरफल के छोड़ने को; पंचपरमेष्ठि का शरण ग्रहण करने को; और तत्त्वपथ-सच्चेमार्ग के ग्रहण करने को कहते हैं।

व्रतप्रतिमा—पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत के निरतिचार पालन करने को कहते हैं।

सामायिकप्रतिमा—स्नानादि से शुद्ध होकर जिनमंदिर में या और किसी पवित्र स्थान में खड्गासन होकर या पद्मासन बैठकर त्रिकाल मन, वचन, काय की शुद्धि पूर्वक पञ्चपरमेष्ठि के नमस्कार करने को, या उनके स्वरूप का चिन्तवन करने को, अथवा अपने आत्मस्वरूप के विचारने को कहते हैं।

प्रोषधोपवासप्रतिमा—अपनी शक्ति को न छिपाकर अष्टमी और चतुर्दशी को नियमपूर्वक प्रोषधोपवास करनें को कहते हैं। इस दिन सब समय ध्यानाध्ययनादि में बिताना चाहिए।

सचित्तत्यागप्रतिमा—मूल, फल, शाक, कन्द, फूल, बीज आदि सचित्त वस्तुओं के न खाने को कहते हैं।

ब्रह्मचर्यप्रतिमा—शरीर को मल-मूत्रादि अपवित्र वस्तुओं के उत्पत्ति स्थान और उनका कारण, दुर्गन्धित, ग्लानि का कारण तथा मलप्रवाही-जिससे हरवक्त मल निकलता रहता है ऐसा समझ कर काम से विरक्त होने को-कामवासना के नष्ट कर देने को कहते हैं।

आरंभत्यागप्रतिमा—नौकरी करना, खेती करना, व्यापार करना आदि ये सब जीवों की हिंसा के कारण हैं, इसलिये इनसे विरक्त होने को कहते हैं।

परिग्रहत्यागप्रतिमा—सुवर्ण, धन, धान्य, दासी, दास आदि दस प्रकार के परिग्रह में मोह छोड़कर निज कल्याण के मार्ग में तत्पर, संतोषी-धर्मपिपासु होने को कहते हैं।

अनुमतित्यागप्रतिमा—आरंभ-खेती, व्यापार आदि; परिग्रह, धन-धान्य, सुवर्ण दास-दासी, आदि और ऐहिक-विवाह आदिक कार्यों में सम्मति न देने को कहते हैं।

उद्दिष्टत्यागप्रतिमा—अपने लिये अपने उद्देश्य से बनाये हुए भोजन के न करने को कहते हैं।

इस प्रतिमा के दो भेद हैं—

पहला—खण्डवस्त्र व कोपीन को रखनेवाला क्षुल्लक।

दूसरा—लंगोटमात्र रखकर पाणिपात्र से आहार करने वाला ऐलक। इसके बाद मुनिधर्म ग्रहण किया जाता है।

आदिके छह प्रतिमाधारी जघन्य श्रावक कहलाते हैं। इससे आगे नवमीं प्रतिमा तक मध्यम श्रावक कहलाते हैं। और दशवीं तथा ग्याहरवीं प्रतिमा वाले उत्कृष्ट श्रावक कहलाते हैं।

उक्त व्रतों का जो श्रावक निर्दोष पालन करते हैं और निरंतर अपने आत्मा को पवित्र बनाने का प्रयत्न करते हैं वे स्वर्ग में जाते हैं। और वहाँ से आकर मनुष्यभव द्वारा निर्वाण-मोक्ष प्राप्त करते हैं। कुमार ! यह पवित्र गृहस्थधर्म तुम्हें धारण करना चाहिए।

प्रभो ! आपने मुझ पर बड़ा उपकार किया जो मुझे श्रावकधर्म के पवित्र उपदेश से पवित्रित किया। मुझे आपसे एक बात पूछनी है। आप उसके उत्तर देने की कृपा करें तो बहुत अनुग्रह हो।

वह यह है कि, श्रीमती को जब मैंने देखा तब उस पर मेरा बड़ा प्रेम हुआ। इस असामयिक और बिना परिचय के प्रेम का क्या कारण है ?

मुनिराज बोले, मेरूपर्वत के उत्तर की ओर वीतशोक नामक एक शहर था। उसका राजा महेन्द्रविक्रम और उसकी प्रिया धनश्री थी। इनके एक पुत्र था। उसका नाम था नागदत्त। वहीं एक साहुकार था। उसका नाम वसुदत्त की और उसकी पत्नी वसुमती थी। यही श्रीमती तब वसुदत्त था नागवसु नाम की पुत्री थी। इसका विवाह नागदत्त से हुआ था।

एक दिन वहाँ गुप्तमुनि आये। नागदत्त उनकी वन्दना के लिये गया। मुनिराज से धर्म का उपदेश सुनकर उसने पंचमी का व्रत ग्रहण किया। उस दिन उपवास के कारण भाग्यवश उसे कुछ वेदना हो गई। उसकी बुरी हालत देखकर माता-पिता ने उससे कहा पुत्र ! देख तो अब उजेला हो गया है। तू उठ और भगवान के दर्शन कर आ। पीछे कुछ भोजन कर लेना, जिससे

तेरी तवियत ठीक हो जायेगी। असल में थी तो तब भी रात ही, पर माता-पिता से पुत्र का कष्ट न देखा गया। इसलिये उन्होंने पुत्र के शय्याग्रह में कुछ छेद करवा कर और उनमें काँच लगवाकर उन्हें ऐसे बनवा दिये जिससे दिन जान पड़े।

पर नागदत्त ने यही उत्तर दिया कि रात कितनी है यह मुझे मालूम है। पिताजी! आप कष्ट न उठाएं। मैं तब तक भोजन न करुँगा जब तक कि दिन अच्छी तरह न निकल जायेगा। मुझे प्राण देना मंजूर है, पर व्रत भंग करना मंजूर नहीं। तदनन्तर कि उसकी क्षुधा वेदना बढ़ती ही गई, पर वह अपने विश्वास पर दृढ़ रहा।

जब उसने समझा कि अब मेरा जीना कठिन है ? तकलीफ से छुटकारा मिलना मुश्किल है, तब उसने अपनी इच्छा और चित्तवृत्ति को सब ओर से रोककर जिन भगवान के स्मरण में लगाया। वह निराकुलता से कष्ट पर विजय प्राप्त करने लगा। वह शान्ति को अपनाने लगा। जैसे-जैसे उसका अन्त समय निकट आता गया वैसे-वैसे ही वह बड़ी धीरता के साथ संसार के मायाजाल से मुक्त होने लगा। आखिर कुछ रात के रहते उसने अपनी जीवनलीला पूर्ण की।

पुण्य और धर्म के प्रभाव से वह सौधर्म स्वर्ग में सूर्यप्रभ देव हुआ। वहाँ उसकी आयु पाँच पल्य की हुई। उसने अवधिज्ञान से स्वर्ग प्राप्ति का कारण जाना। वहाँ से वह अपने बन्धुओं को समझाने के लिये आया। उसके उपदेश से उसकी स्त्री को बड़ा वैराग्य हुआ। वह भी तपस्विनी बनकर तपश्चर्या करने लगी। अन्त समय समाधि मृत्यु प्राप्त कर वह भी सौधर्म स्वर्ग में गई। और उसी सूर्यप्रभ-भूतपूर्व नागदत्त की देवी हुई।

कुमार ! स्वर्ग से निकल कर तू जो जयंधर का पुत्र हुआ और वह देवी विजयंधर की पुत्री यह श्रीमती हुई हैं।

नागकुमार को मुनिराज के उत्तर से बड़ा सन्तोष हुआ। उसे पंचमी-व्रत पर बड़ी श्रद्धा हुई। उसने मुनिराज से पंचमीव्रत के करने की विधि पूछी। मुनि ने उसे इस तरह समझाया—

यह व्रत कार्तिक, फागुन या आषाढ़ सुदी पंचमी को किया जाता है। इसके पहले अर्थात् चतुर्थी के दिन स्नान के बाद भोजन किया जाये। वह भोजन माँगा हुआ न होना चाहिए। इसके बाद मुनिराज के पास जाकर मन, वचन, काय की शुद्धिपूर्वक व्रत ग्रहण करना चाहिए और उस दिन तथा उपवास के दिन को धर्मध्यान, शास्त्र-स्वाध्याय आदि में शान्ति के साथ बिताना चाहिए।

उपवास के दिन एक बात यह भी आवश्यक है कि उपवास करने वाला न स्नान करे, न तैल लगावे, न भूषण पहने, न पलंग पर सोये और न घर सम्बन्धी ही कोई काम करे अर्थात् आत्मा को शान्त रक्खे। उसमें किसी कारण से विकार न होने दे। कषायों को खूब मन्द करे। क्योंकि उपवास का मतलब ही यह है कि, उसके कषाय, विषय और आहार का त्याग किया जाये। केवल आहार के छोड़ने को तो आचार्यों ने लंघन कहा है।

पारणा के दिन नित्यक्रियाएँ-पूजनादि करके पहले अपनी शक्ति के अनुसार पात्रों को दान देना चाहिए। पश्चात् अपने को आहार करना उचित है।

यह व्रत पाँच वर्ष और पाँच महीने तक किया जाता है। इसके बाद व्रत का उद्यापन करना चाहिए। और यदि उद्यापन के करने की शक्ति न हो तो व्रत दूना करना चाहिए। जो उद्यापन करना चाहें उन्हें नीचे लिखी विधि के अनुसार करना चाहिए।

पाँच प्रतिमाएँ बनवाकर उनकी प्रतिष्ठा करवानी चाहिए। और पाँच घण्टा, पाँच ध्वजा और पाँच पुस्तक जिन मंदिर में देकर महाभिषेक करना चाहिए। मुनियों के लिये पुस्तकें, आर्यिका के लिये वस्त्र, उपकरण

आदि और दीन-दुःखियों के लिये आहार औषधादि देना उचित है। इस प्रकार मुनिराज से उपवास और उसकी उद्यापन विधि सुनकर नागकुमार ने भी पञ्चमी व्रत ग्रहण किया। इसके बाद वह उन्हें नमस्कार कर अपने महल में चला गया और अपनी प्रिया के साथ सुख से रहने लगा।

कुछ दिनों के बाद नागकुमार की जन्मभूमि से मंत्री नयंधर आया। नागकुमार से मिलकर उसे बड़ी खुशी हुई। वह नागकुमार से बोला, कुमार! महाराज को आपने जब से छोड़ा तब से उनकी खबर तक भी न ली! वे आपके बिना बड़े व्याकुल हो रहे हैं। उन्होंने मुझे आपको लिवाने के लिये भेजा है। इसलिये अब आप विलम्ब न कर शीघ्र ही चलने की तैयारी करें।

कुमार अपने मामा के पास गया और उससे सब हाल कह कर अपनी प्रियाओं को साथ लिए हुए वह कनकपुर की ओर रवाना हुआ। रास्ते में वह अपनी सभी प्रियाओं और जो वस्तुएँ उसे प्राप्त हुईं थीं वे सब भी साथ लेता आया। जब उसके माता-पिता को पुत्र के आने का हाल ज्ञात हुआ तब उन्हें बड़ी खुशी हुई। वे कुछ दूर तक पुत्र के लिवाने को उसके सामने गये।

नागकुमार भी उन्हें देखकर रास्ते में सवारी पर से उतर पड़ा। वह बड़ी जल्दी दौड़कर माता-पिता के पावों में गिर पड़ा। उन्होंने उठाकर उसे बड़े प्रेम से छाती से लगाया। चिर वियोग के बाद आज पुत्र प्रेम से माता का संतप्त हृदय ठण्डा हुआ उसकी आँखों से प्रेमाश्रु गिरने लगे। उसका गला भर आया। बड़ी कठिनता से उसने पुत्र को आशीष दी। इसके बाद उन्होंने बड़े उत्सव के साथ पुत्र को शहर में प्रवेश कराया।

प्रजा ने भी अपने युवराज का खूब आदर सत्कार किया। घर-घर खूब उत्सव मनाया गया। दीन अनाथों को दान दिया गया। सच है, वियोग के बाद सम्मिलन का जो सुख होता है वह अपूर्व ही होता है।

विशाल लोचन और उसका पुत्र श्रीधर अपने कर्त्तव्यपर शर्मिन्दा होकर पहले ही दीक्षित हो गये थे। सौत का डाह बड़ा बुरा होता है। नहीं तो असमय में उन्हें क्यों ऐसा करना पड़ता ? संसार से विरक्त होना अच्छा है,

परन्तु वैराग्य का उदय जब स्वयं हृदय में हो तब। ऐसे मलिनता के कारणों से विरक्त होना उतना उत्तम नहीं कहा जा सकता।

जयंधर इस समय पूर्ण सुखी हैं। उनके पुत्र पौत्र का अपूर्व सुख है। अब वे संसार छोड़ने के प्रयत्नों में हैं। एक दिन की बात है कि जयंधर भोजन के बाद हाथ में दर्पण लिए देख रहे थे अचानक उनकी नजर एक सफेद बाल पर पड़ी। देखकर उन्हें पूर्व की वैराग्य-वासना ने उत्तेजित किया। अब एक घड़ीभर के लिये भी उन्हें घर पर रहना कठिन जान पड़ने लगा। उन्होंने उसी समय नागकुमार को बुलवाया और उसे राज्यभार सौंपकर वे बोले—

हे पुत्र ! आज तक तुम युवराज गिने जाते थे, पर अब से तुम धराधिपति कहे जाओगे। देखो, यह पदस्थ अभिमान करने का नहीं है, किसी को दुःख देने का नहीं है। जो अपनी प्रजा है वह जिस तरह सुखी रहे और अन्याय का कभी प्रचार न हो उसी तरह तुम उस पर शासन करना। सत्य की रक्षा के लिये अपने कुटुम्बियों को भी दण्ड देना पड़े तो देना, पर पवित्र सत्य की हत्या कभी मत करना। जिस काम को करो उसे बहुत सोच-विचार कर और अपने राज्य के अनुभवियों की सच्ची सलाह से करना। स्वार्थ को कभी पास मत फटकने देना। विचारों को उदार बनाना। जो दुःखी हो उसकी सहायता करना। इसके अतिरिक्त यह नीति सदा ध्यान में रखना कि,

अयं निजः परो वेति गणनां लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

और अधिक मैं तुम्हें क्या बताऊँ ? तुम स्वयं बुद्धिमान हो। पर मेरा जो कर्त्तव्य था, उसे मैंने पूरा किया। उस पर ध्यान देना या न देना तुम्हारे वश का काम है। मैं यह चाहता हूँ कि तुम अपनी कुल की मानमर्यादा सदा के लिये चिरंजीवी करने की कोशिश करोगे। बस, यही मेरा तुम्हें उपदेश है।

इसके बाद वे अपने राज्य के संचालक को खूब समझा-बुझाकर वन के लिये रवाना हो गये। वे सीधे पिहिताश्रव मुनिराज के पास गये और उनसे उन्होंने दीक्षा लेकर तपश्चर्या करना आरंभ की। उन्होंने थोड़े ही दिनों में

उनसे उन्होंने दीक्षा लेकर तपश्चर्या करना आरंभ की। उन्होंने थोड़े ही दिनों में ध्यान बल से आत्मशक्ति को खूब बढ़ा लिया। अन्त में कर्मों का नाश कर वे मोक्ष चले गये।

पतिवियोग से पृथ्वी देवी को भी राज्य में रहना कठिन हो गया। वह भी एक आर्यिका द्वारा दीक्षित होकर तपश्चरण करने लगी और अन्त में ससमाधि शरीर परित्याग कर अच्युतस्वर्ग में देव हुई।

नागकुमार को अपने माता-पिता के वियोग से हुआ तो बड़ा ही दु:ख, पर उसे इससे बड़ा सन्तोष हुआ कि माता-पिता का पुत्र के प्रति जो कर्त्तव्य होता है उसे पूर्ण कर वे प्रवृजित हुए हैं।

नागकुमार को राज्याधिकार मिला। उसने सबका सम्मान किया। व्याल, महाव्याल, अछेद्य, अभेद्य, सहस्रभट आदि अपने पूर्ण शुभचिन्तक जितने मित्र थे उनके लिये खूब धन दिया। किसी के लिये उसने गाँव दिया, किसी को जागीर दी। अपनी जितनी स्त्रियाँ थीं उनके लिये भी उसने ग्राम आदि दिये। सब रानियों के बीच में पट्टरानी का पद श्रीमती, धरणिसुन्दरी, गणिकासुन्दरी और त्रिभुवनसुन्दरी को मिला।

नागकुमार बड़े सुख-चैन से रहने लगा। वह धर्मक्रियाओं को नित्यप्रति बड़ी श्रद्धाभक्ति से करता था। सज्जन धर्मात्माओं का खूब सत्कार करता था। प्रजापालन में वह कभी असावधानी न करके न्याय का सदा साथ देता था। प्रजा उसके राज्य-शासन से बड़ी खुश रहा करती थी।

नागकुमार बड़ा विनोदी था। वह कभी हाथियों और कभी घोड़ों पर चढ़कर उन्हें मनमाना घुमाता। कभी वह वन बिहार के लिये जाता। कभी वह अपने मित्रों के साथ जललीला में समय बिताता। कभी वह गेंद खेलता। कभी वह अच्छे-अच्छे विद्वानों को बुलाकर उनका शास्त्रार्थ सुनता। कभी वह कवियों की काव्य सुधामृतरूपी वाणी का स्वाद लेता और कभी वह स्वयं की कविता लिखता।

नागकुमार धर्मात्मा भी अच्छा था। उसके हृदय में बड़ी दया थी। किसी को भी यदि वह दुखी देखता तो उसी समय उसके लिये सब तरह का प्रबन्ध कराता। वह भगवान की पूजन करता, पात्रों को दान देता, जिनमंदिर बनवाता, उनकी प्रतिष्ठा करवाता। अपनी राजधानी में विद्यालय, पाठशाला, पुस्तकालय, श्राविकाश्रम, अनाथालय, औषधालय आदि सर्वोपयोगी संस्थाएं भी उसने खुलवा रखीं थीं। वह बहुत से असमर्थ विद्यार्थियों को अपने राज्य से छात्रवृत्ति देता। उसका सदा यह लक्ष्य रहता कि उसकी प्रजा विदुषी हो, ध नी हो, धर्मात्मा हो, दयालु हो। इसके लिये कभी किसी बात की त्रुटि उसमें नहीं आने देता। दयालु राजा का प्रजा के प्रति जो कर्त्तव्य होता है। नागकुमार उसे पूर्ण रीति से निवाहता था।

कुछ दिन आनन्द में बीतने पर उसे एक पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। पुत्र का शुभनाम देवकुमार रक्खा गया। वह भी थोड़ी ही उमर में अच्छा विद्वान् हो गया।

बड़े-बड़े राजे-महाराजे नागकुमार की छत्र छाया में रहने लगे। उसके न्यायराज्य की चारों ओर खूब प्रतिष्ठा हो गई।

एक दिन नागकुमार अपने महल पर बैठा हुआ था कि उसे एक अत्यन्त सुन्दर बादलों का दृश्य दीख पड़ा। उसने उसका चित्र लेना चाहा, पर इतने ही में देखते-देखते वह बादल का टुकड़ा छिन्न-भिन्न हो गया। उसकी विनाशशील दशा के देखने से उसके चित्त पर भी उसका गहरा असर पड़ा। उसने संसार की भी यही दशा समझकर पुत्र को बुलवाया और राज्य उसे सौंपकर आप व्यालादि मित्रों के साथ प्रवृजित हो गया। उसने कैलाश पर्वत पर जाकर खूब तपश्चर्या की, शांति से परीषह सहीं। अंत में वह कर्मों का नाशकर मोक्ष गया। व्याल, अछेद्य और अभेद्य भी मोक्ष गये। इनके अतिरिक्त सहस्रभट आदिक अपने-अपने परिणामों के अनुसार सौधर्म आदि स्वर्ग में गये।

नागकुमार की पूर्ण आयु एक हजार वर्ष की थी। उसमें सत्तर वर्ष वह कुमार रहा, आठ सौ वर्ष तक उसने राज्य-शासन किया, चौसठ वर्ष उसके छद्मस्थ अवस्था में बीते और छयासठ वर्ष वह केवलज्ञानी रहा।

नागकुमार के बाद उसकी स्त्रियाँ आर्यिका हो गईं और तपश्चरण द्वारा अपने-अपने भावों के अनुसार उन्होंने भी स्वर्गादि सद्गति प्राप्त की।

गौतम भगवान के द्वारा उपदिष्ट नागकुमार का पावन चरित श्रेणिक ने सुना। उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। क्योंकि यह चरित सुख का देने वाला और पुण्य का कारण है। इसके बाद वह गौतमस्वामी को नमस्कार कर अपनी राजधानी वापिस लौट आया। और आनन्द से रहने लगा।

❖❖